UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186480

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H636.2 G89B Accession No. 6.H.2859

Author गुप्त, परमेश्वरीप्रसाद

Title भारत के गाय-बैल १९६३

This book should be returned on or before the date last marked below.

सत्साहित्य-प्रकाशन

भारत के गाय-बैल

परमेश्वरीप्रसाद गुप्त

पुस्तक भेंट के निमित्त है

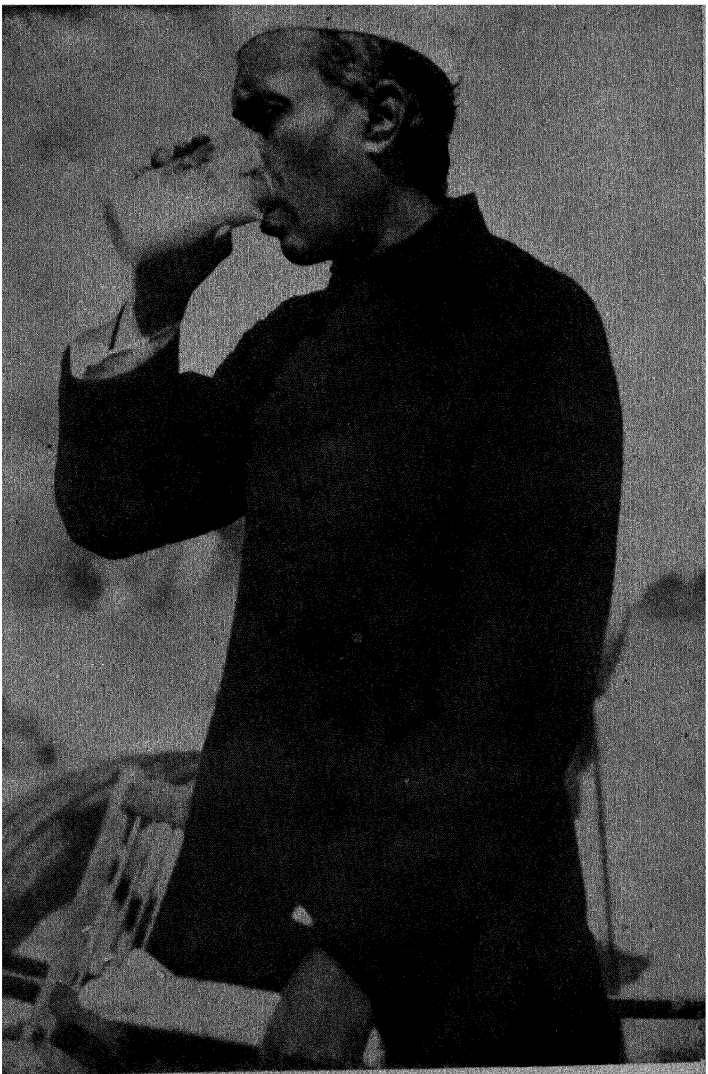
१९६३

सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल
नई दिल्ली

पहली बार : १९६३
मूल्य
सवा दो रुपये

मुद्रक
सत्यपाल धवन
दी सेंट्रल इलैक्ट्रिक प्रेस
दिल्ली-६



श्री पं० जवाहरलाल नेहरू
लेखक के फार्म पर दुग्धपान करते हुए

जिन्होंने प्रत्येक क्षेत्र में विधिवत रूप से एवं सिपाही
की भांति तत्परता पूर्वक कार्य करने की प्रत्यक्ष और
इस पुस्तक को लिखने की परोक्ष प्रेरणा दी, उन

पं० जवाहरलाल नेहरू

को

सादर समर्पित

प्रकाशकीय

'मण्डल' से अबतक कई ग्रामोपयोगी पुस्तकें निकल चुकी हैं। उनमें न केवल अन्नों, दलहनों, साग-भाजियों आदि की खेती करने की सविस्तर जानकारी दी गई है, अपितु उनके उत्पादन को बढ़ाने के उपाय भी बताये गए हैं। भारत कृषि-प्रधान देश है। जबतक कृषि की उन्नति नहीं होगी, तबतक देश का अभ्युदय असं दव है।

इस पुस्तक के लेखक की कुछ समय पूर्व 'चारा-दाना' नामक पुस्तिका प्रकाशित हुई थी। उसे पाठकों ने बहुत पसंद किया। उसके बाद उनकी दूसरी पुस्तक 'भारतीय अर्थ-व्यवस्था में गाय का आर्थिक मूल्यांकन' निकली। यह पुस्तक भी अपने ढंग की बहुत ही उपयोगी रचना है। हमें हर्ष है कि अब उनकी तीसरी पुस्तक 'भारत के गाय-बैल' पाठकों के हाथों में पहुंच रही है। इस पुस्तक में उन्होंने विशद रूप में बताया है कि हमारे देश में गाय-बैल की कहां-कहां, कौन-कौन सी किस्में मिलती हैं और उनकी नसल के सुधार के लिए क्या-क्या करना चाहिए।

इसमें कोई संदेह नहीं कि यह पुस्तक बहुत ही ज्ञानवर्द्धक है। जो लोग गाय-बैल रखते हैं, उनके लिए तो इस पुस्तक की उपयोगिता है ही, लेकिन जो नहीं रखते, उनको भी इस पुस्तक से बहुत-कुछ मिलेगा।

लेखक इस विषय के विशेषज्ञ हैं। उन्होंने गाय-बैलों के संबंध में केवल सैद्धांतिक ज्ञान ही नहीं बल्कि व्यावहारिक ज्ञान भी प्राप्त किया है। अतः इस पुस्तक की सामग्री की प्रामाणिकता स्वयंसिद्ध है। विषय को अच्छी तरह समझाने की दृष्टि से गाय-बैलों की प्रायः सभी नसलों के चित्र दे दिये गए हैं, साथ ही कुछ नक्शे भी।

आशा है, इस लोकोपयोगी पुस्तक का लाभ सभी पाठक लेंगे।

—मंत्री

भूमिका

भारत में गौ-संबंधी-साहित्य का अभाव है। हिन्दी में तो, जिसे भारत के अधिक-से-अधिक लोग बोलते और समझते हैं, ऐसे साहित्य का और भी अभाव है। इस विषय पर कुछ पुस्तकें अंग्रेजी में लिखी गई हैं। कुछ गौ-प्रेमियों एवं विशेषज्ञों ने इस कमी को दूर करने के लिए हिन्दी में कुछ पुस्तकें लिखी हैं, परन्तु वे अंग्रेजी की पुस्तकों के आधार पर ही लिखी गईं प्रतीत होती हैं। आजकल जो गौ-संबंधी-साहित्य उपलब्ध है, वह भारत-जैसे देश में न तो अधिक लाभदायक सिद्ध हो सका है और न तत्संबंधी समस्याओं को हल करने में सहायक ही।

सन् १९१८ से महात्मा गांधी तथा कुछ गौ-प्रेमी साथियों और अपने पिता के गौ-प्रेम से प्रेरित होकर मैंने इस विषय का अध्ययन आरंभ किया था और वास्तविक जानकारी तथा अनुभव प्राप्त करने के लिए समस्त भारत का पर्यटन भी किया था। इन यात्राओं में अनेक संस्थाओं, पशुशालाओं तथा संबद्ध कालेजों के कार्य का अवलोकन किया और उनमें रहकर गाय-बैलों के रहन-सहन तथा अन्य स्थितियों का अनुशीलन भी करता रहा। इस विषय पर मैंने कुछ भारतीय और विदेशी साहित्य पढ़ा है और विगत १२ वर्षों से अधिक खेती करने, पशु चराने, गोबर उठाने, चारा काटने, पशुओं को खिलाने, गाय दुहने, उनके रोग-निवारण तथा प्रजनन कराने आदि का कार्य करता रहा हूं। इस विषय से सम्बन्धित सरकारी और गैर-सरकारी सभाओं तथा कमेटियों की बैठकों में भाग लेकर अनुभव प्राप्त करने के साथ-साथ, इस बारे में सरकार और जनता का क्या दृष्टिकोण है, यह भी समझने का प्रयत्न किया है।

गौ-संबंधी साहित्य के अभाव को देखते हुए मैं कुछ दिनों से इस विषय पर एक पुस्तक लिख रहा था। परन्तु अप्रैल, १९६२ में जब पटना में कृषि-गौ-समिति की बैठक में इस विषय पर श्री ढेबरभाई का भाषण

और श्री वैद्यनाथ, श्री करणभाई आदि अन्य लोगों के विचार सुने तो मैंने इस कार्य को यथाशीघ्र पूरा करने का निश्चय कर लिया।

भारतीय गाय और बैल का मूल्यांकन करने से पता चलता है कि इस समय उनकी स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई है और वे अधिक-से-अधिक अवनत अवस्था में हैं। साथ ही उनके खिलाने-पिलाने, प्रजनन, क्रय-विक्रय, रोग-निवारण और पालन-पोषण का स्तर भी काफी नीचे गिर गया है। अतः इस क्षेत्र में अधिक-से-अधिक और शीघ्र-से-शीघ्र सुधार करने की आवश्यकता है।

संयोग से अब भारत-सरकार की बागडोर ऐसे व्यक्तियों के हाथ में है, जिनके सहयोग से पशु-उन्नति के कार्य में काफी सहायता मिल सकती है।

भारतीय जनता भी पशुओं की वर्तमान अवस्था से बहुत चिन्तित एवं दुखी है। उसके सम्मुख इस संबंध में अनेक प्रश्न और समस्याएं उपस्थित हैं। हमारे मार्गदर्शक पूज्य विनोबाजी तथा ढेबरभाई-जैसे वरिष्ठ नेता भी बड़ी तत्परता से इन समस्याओं तथा उलझनों को सुलझाने में लगे हुए हैं। ऐसी अवस्था में इस विषय की यथोचित जानकारी कराना परमावश्यक हो गया है।

इन सब बातों को दृष्टि में रखकर तथा अपने अनुभवों के आधार पर मैंने इस पुस्तक को लिखा है।

इस पुस्तक के प्रथम अध्याय में भारतीय पशुओं के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है और यह स्पष्ट किया है कि मनुष्य का पशुओं से कितना घनिष्ठ संबंध है; उनकी जातियों और नसलों में किस प्रकार परिवर्तन, उन्नति अथवा अवनति हुई है और किस प्रकार पशुओं की नवीन जातियां तथा नसलें कायम हुई हैं। इसके अतिरिक्त इस अध्याय में व्यवहार में आनेवाले आवश्यक गौ-संबंधी तकनीकी शब्दों की परिभाषा दी गई है, जिससे पुस्तक का अध्ययन करते समय पाठक विषय को आसानी से समझ सकें।

अगले अध्याय में भारत के सारे पशुओं का क्रम से वर्णन किया गया है। फिर उस क्रम से समूचे भारत में मिलनेवाले ४४ जातियों के

पशुओं का विधिवत् विवरण दिया है। अंत में विभिन्न प्रदेशों के स्थानिक जलवायु और पशुओं के गुणों के आधार पर, संक्षेप में सभी वर्णित पशुओं का वर्गीकरण करके, तालिका में विश्लेषण किया गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि भिन्न-भिन्न प्रदेशों में पाये जानेवाले प्रत्येक जाति के पशुओं की प्रजनन द्वारा किस प्रकार उन्नति हो सकती है।

इसके बाद यह बताया है कि पशुओं की उन्नति के लिए प्राथमिक अनुपेक्षणीय आवश्यकताएं क्या हैं। किस जलवायु के इलाके में कैसी भूमि, मिट्टी, वर्षा, वांछित खनिज पदार्थों की उपलब्धि, घास-चारा आदि के साथ, पशु कैसे होते हैं, मनुष्य पशु क्यों पालता है, भिन्न-भिन्न स्थानों में अलग-अलग प्रकार के पशु क्यों पाये जाते हैं—इन सभी प्रश्नों पर यथोचित प्रकाश डाला गया है। प्रत्येक प्रदेश और जाति तथा नसल के क्रम से भारत के समस्त पशुओं की उपयोगिता का चित्र खींचा है। इन पशुओं का सुधरा हुआ स्वरूप कितना समाजोपयोगी हो सकता है, इस बात का भी दिग्दर्शन कराने का प्रयास किया है।

अंत में भारत के गाय-बैलों के विश्लेषण तथा उनके सुधरे हुए स्वरूप की एक तालिका दी गई है, ताकि पाठक उसे देखकर आसानी से यह निश्चय कर सके कि अमुक प्रदेश या स्थान में अमुक प्रकार के पशु मिलते हैं और उनकी वर्तमान स्थिति क्या है तथा उनकी स्थिति को कैसे सुधारा जा सकता है।

उपयुक्त साहित्य के अभाव में आज भारत में उपलब्ध जन, धन एवं पशु तथा अन्य साधनों का ठीक उपयोग नहीं हो रहा है और अपर्याप्त जानकारी के कारण पशुओं की उन्नति नहीं हो पा रही है। पिछले वर्षों में भारत में पशुओं की उन्नति का जो कार्य हुआ है, यदि उसका अध्ययन करें तो मालूम होगा कि धन और शक्ति खर्च करके तथा अनेक पशुशालाओं एवं अन्य संस्थाओं में प्रयोग व अन्वेषण होने और उनमें कुछ सफलता मिलने पर भी, पशुओं की उपयोगिता नहीं बढ़ सकी है, बल्कि दिन-पर-दिन उनकी दशा गिरती ही जा रही है। इस कमी को दूर

करने का प्रयास करना चाहिए। इस ओर यह प्रकाशन एक कदम है।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में यह भी ध्यान रखा गया है कि यह पुस्तक एक संदर्भ-ग्रंथ और भारतीय खेती और पशुपालन-विद्या के स्कूलों और कालेजों में पाठ्य पुस्तक का भी काम दे सके। आशा है, यह अपने उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक हो सकेगी।

सन् १९३१ में पं० जवाहरलाल नेहरू मेरे पशु-पालन-फार्म (कैटिल-ब्रीडिंग फार्म) पर आये थे और उसका निरीक्षण किया था। वहां के सुव्यस्थित कार्य से संतुष्ट होकर उन्होंने ये पंक्तियां लिखी थीं :

आज मैं [illegible] अपनी और से और अपना लाल बनाम के साथ श्री परमेश्वरी प्रसाद गुप्त के खेत और डेयरी को देखने गया था। और उन्होंने मुझको अपना सब काम समझाया। मैंने देखा कि कितनी सफाई और सफलता से यह काम चला रहे हैं। मुझे आशा करता हूं कि इनका काम बढ़ेगा और लोग इनकी सहायता करेंगे। और मैं यह भी उम्मीद करता हूं कि और लोग भी ऐसे काम को देखकर अपनी अपनी जगह पर डेयरी चलाने की कोशिश करेंगे।

फरवरी २६-१९३१ — जवाहर लाल नेहरू

कहने की आवश्यकता नहीं कि पंडितजी के इस प्रोत्साहन से मुझे बहुत बल मिला। प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में उनकी उपर्युक्त पंक्तियों की विशेष प्रेरणा रही है। मैं उनका आभारी हूं।

—परमेश्वरीप्रसाद गुप्त

विषय-सूची

पृष्ठ

१. पशु और उनका वर्गीकरण ६
२. केरल-प्रदेश के गाय-बैल १४
३. मद्रास-प्रदेश के गाय-बैल १७
४. मैसूर-प्रदेश के गाय-बैल २५
५. आंध्र-प्रदेश के गाय-बैल ३०
६. महाराष्ट्र-प्रदेश के गाय-बैल ३८
७. मध्य-प्रदेश के गाय-बैल ४४
८. महागुजरात के गाय-बैल ५६
९. राजस्थान के गाय-बैल ६५
१०. पंजाब और हिमाचल-प्रदेश के गाय-बैल ७९
११. उत्तरप्रदेश के गाय-बैल ८५
१२. बिहार के गाय-बैल ९६
१३. बंगाल के गाय-बैल १०७
१४. असम के गाय-बैल १२१
१५. उड़ीसा के गाय-बैल १२३
१६. पाकिस्तान के प्रमुख पशु १२५
१७. सिंहावलोकन १३०

: १ :

पशु और उनका वर्गीकरण

भारतीय गाय जेबू गाय की वंशज है। जेबू जाति के पशु प्रायः भारत, चीन तथा इसके आसपास मध्य-दक्षिण एशिया और कहीं-कहीं अफ्रीका में पाये जाते हैं। ये पशु यूरोप और उत्तरी एशिया के वास्टर्स जाति के पशुओं की आकृति और गुणों से कुछ भिन्न होते हैं। वास्टर्स जाति के पशु यूरोप तथा अन्य ठंडे देशों में पाये जाते हैं। वे गर्म देशों में नहीं पनपते। जेबू जाति के पशु भारत-जैसे गर्म देशों में खूब पनपते हैं, इसलिए भारत में जेबू जाति के ही पशु मिलते हैं।

भारत में ऋग्वेद के समय के पहले पशु किस प्रकार के थे, बाद में आर्य लोगों के साथ और उसके पश्चात् कब कौन-कौन से पशु आये तथा किस प्रकार बाहर से आये हुए पशु भारत में फैले, इस ऐतिहासिक विश्लेषण में न पड़कर यह बताना अधिक लाभदायक होगा कि इस समय भारत में कहां-कहां, किस-किस जाति के पशु मिलते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इस समय भारत में चार प्रकार के मूल पशु मिलते हैं :

(१) उत्तर के सफेद भूरे रंग के बड़े पशु।

(२) दक्षिण के मैसूर जाति के प्रतिरूप माथे और सींगवाले पशु।

(३) पश्चिम के निराले ढंग के माथे व सींगवाले 'गिर' जाति के और उनके प्रतिरूप पशु।

(४) हिमालय पर्वत के तथा भारत के अन्य पहाड़ी इलाके के और उसके आसपास के छोटे कदवाले सफेद, काले, गहरे गेरू के रंगवाले तथा चितकबरे रंग के पशु।

उपर्युक्त विभिन्न प्रकार के पशु ज्यों-ज्यों अपने मुख्य निवास-स्थान से दूर होते गये, त्यों-त्यों वहां की जलवायु, भूमि तथा अन्य स्थितियों और वहां के रहनेवालों की आवश्यकताओं, खान-पान एवं रहन-सहन के अनुसार बदलते गये। उनकी आदतों, गुणों और क़द आदि में भी परिवर्तन हुआ। जिस नये इलाके में ये पशु गये, वहां के मूल पशुओं से इनका संयोग हुआ और कहीं-कहीं पिता-पुत्री, माता-पुत्र और उनकी सन्ततियों में बहन-भाई, भतीजा-बुआ के आपस के संयोग के फलस्वरूप वहां के पशुओं की जाति व नस्ल मूल पशुओं से भिन्न होगई।

भारत में गाय और मनुष्य का गहरा सम्बन्ध है। गो-पालन मानव-सभ्यता के साथ आरम्भ हुआ। ज्यों-ज्यों मानव-सभ्यता और भारतीय संस्कृति का विकास हुआ, भारतीय गो-पालन की दिशा में आगे बढ़े; यहां तक कि, जैसा श्रीमद्भागवत में लिखा है, जब इन्द्र का प्रकोप इतना बढ़ गया कि जन-धन एकदम नष्ट होने लगा, तब श्रीकृष्ण भगवान् ने उसकी रक्षा के लिए गोवर्धन पर्वत को उठाया। उस समय मनुष्यों ने पहले पशुओं को पर्वत की आड़ में किया, फिर आप हुए। अर्थात् ऐसे अवसर पर भी उन्होंने अपने पशुओं को अपने साथ लेकर अपनी रक्षा की। यदि इसको केवल कथा-मात्र ही माना जाय तो भी यह स्पष्ट ही है कि पशुओं से मनुष्य का कितना निकट का सम्बन्ध था। मनुष्यों के साथ पशु पारिवारिक सदस्यों की भांति बराबर रहते थे।

जबतक यह दृष्टिकोण नहीं रखा जायगा कि मनुष्यों की उन्नति के बिना पशुओं की और पशुओं की उन्नति के बिना मनुष्यों की उन्नति असम्भव है, तबतक पशुओं की उन्नति और विकास भली प्रकार नहीं हो सकता। यह तभी सम्भव हो सकता है जबकि पशु-उन्नति के कार्य में भूमि-उपयोग, खेती, पशुओं के लिए चारा तथा दुग्ध-उत्पत्ति, इन चारों में समता और सन्तुलन हो। इसके लिए पशुओं की, नर और मादा, दोनों सन्तानों को सुखपूर्वक पालना और दोनों की उन्नति साथ-साथ करना परम आवश्यक है। केवल एक को भली प्रकार पालने और

दूसरे पर उतना ध्यान न देने से काम नहीं चलेगा।

एक स्थान, गाव तथा इलाके के गाय अथवा बैल अच्छे होते है और दूसरी जगह के खराब या उतने अच्छे नही होते। ऐसा क्यों होता है? इसका कारण यह है कि एक जगह प्रजनन का कार्य एक लक्ष्य से हुआ और दूसरी जगह नही। इससे स्पष्ट है कि एक ही लक्ष्य को सम्मुख रखकर विधिपूर्वक प्रजनन का कार्य करने से आवश्यकतानुसार फल प्राप्त किये जा सकते हैं। जिन लोगों ने लगातार विधिपूर्वक ध्यान देकर पशु-प्रजनन का कार्य किया है, उनके अनुभवो से वाछित गौ-सन्तति उत्पन्न करने की विधि निश्चित की जा सकती है।

जहां पशु-सम्बन्धी आवश्यकताओं को ध्यान मे रखते हुए पशुओं के अवगुणों को दूर करने तथा उनमे आवश्यक गुणों को प्रविष्ट करने की दृष्टि से काफी अरसे तक नसलोत्पत्ति का कार्य किया गया, वहा कुछ समय के बाद एक नसल उस जाति के पशुओ की कायम होगई और वहां के पशुओं में अपेक्षित गुण दिखाई देने लगे। इस प्रकार अनेक नसलें बन गईं। प्राचीन समय मे भारतवर्ष मे चार किस्म के गाय-बैल पाये जाते थे, परन्तु अब बहुत-सी नसलें, जाति और मिश्रण पाये जाते हैं, जिनका वर्णन आगे किया जायगा।

जाति और नसल (ब्रीड) में क्या अन्तर है, यह बताना बहुत आवश्यक है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि नसल में वे पशु आते हैं, जो उस जाति के निश्चित गुण ही नही रखते, बल्कि वे उन गुणोंवाली औलाद भी पैदा करते है। इसलिए किसी जाति के पशुओं को तबतक किसी नसल के पशु नही कहना चाहिए जबतक कि वे बराबर उस नसल के गुण रखने वाली सन्तान उत्पन्न न करते हो। नीचे लिखी परिभाषाएं इस दिशा में सहायक होंगी।

१. **प्रतिरूप (टाइप)**—आकृति, प्रकृति तथा गुण में समानता रखनेवाले।

२. **जाति (क्लास)**—गुण और उपयोगिता में समानता रखनेवाले।

३. **नसल (ब्रीड)**—समान आकृति, गुण और उपयोगिता रखनेवाले तथा उन्हें अपनी सन्तानों में प्रदान करने की क्षमतावाले।

४. **मिश्रित (मिक्स्ड)**—इस शब्द का अभिप्राय एक से अधिक कई जाति या नसल के पशुओं के परस्पर-संयोग से उत्पन्न सन्तति से है।

५. **अवर्णनीय (नान-डिस्क्रिप्ट)**—जिनका रंग-रूप, डील-डौल तथा गुण आदि किसीका, कुछ भी निश्चय और भरोसा न हो, ऐसे पशु।

६. **इकहरे उद्देश्य (सिंगिल परपज)**—ऐसी जाति की गाय, जिसकी बछिया अच्छा दूध देनेवाली गाय बने और बछड़ा कम काम करनेवाला बैल बने; या जिसका बछड़ा अच्छा काम करनेवाला बैल बने और बछिया कम दूध देनेवाली गाय बने।

७. **दुहरे उद्देश्य (डुअल परपज)**—ऐसी जाति की गाय, जिसकी बछिया अच्छा दूध देनेवाली गाय और बछड़ा अच्छा काम करनेवाला बैल बनता है।

८. **सर्वांगी (जनरल परपज या यूटीलिटी)**—ऐसी जाति की गाय, जिसकी बछिया साधारण दूध देनेवाली गाय बने और बछड़ा साधारण काम करनेवाला बैल।

भारत के भिन्न-भिन्न भागों और प्रदेशों में अनेक जातियों और नसलों के अवर्णनीय पशु मिलते हैं। इनका वर्णन विधिवत् अथवा ऐसे तरीके से करना, जिसको सब आसानी से समझ सकें, बड़ा कठिन है। फिर भी इसे अधिक-से-अधिक सरल ढंग से देने का प्रयत्न किया गया है। दक्षिण में कन्याकुमारी से लगे केरल-प्रदेश से आरम्भ करके मध्य-प्रदेश, पश्चिमी तथा उत्तरी भारत के महाराष्ट्र, गुजरात, राजस्थान, पंजाब-प्रदेश तक के तथा हिमालय पर्वत से लगे हुए अन्य प्रदेशों के और अंत में उड़ीसा-प्रदेश के पशुओं की जानकारी दी गई है।

साथ ही यह भी बताया गया है कि जिन पशुओं का वर्णन किया है, उनका मुख्य निवास-स्थान कहां है और उनकी वंश-उत्पत्ति का इतिहास क्या है। क्योंकि उनके प्रतिरूप, जाति या नसल से मिलते-

जुलते मिश्रित जाति के और अवर्णनीय पशु भी कहीं-कहीं मिलते हैं, जिनके विषय में कोई भी बात बिना वंशोत्पत्ति के इतिहास और निवास-स्थान के निश्चित रूप से जाने बिना नहीं कही जा सकती। इन पशुओं की पहचान के लिए उनकी आकृति, बनावट, रंग, डील-डौल आदि का विवरण भी दिया गया है। उनपर उनके निवास-स्थान की जलवायु, भूमि, खानपान आदि का किस प्रकार प्रभाव पड़ा है, इसका भी वर्णन किया है; क्योंकि उनके निवास-स्थान की आवश्यकताओं के अनुसार उनके रहन-सहन में क्या-क्या आवश्यक परिवर्तन किये जा सकते हैं, बिना यह जाने हम कुछ भी निश्चय नहीं कर सकते। इस समय वहां के पशुओं में वांछित गुण क्या-क्या हैं और कितने हैं, यह भी बताया गया है। सुधार की दृष्टि से इस तथ्य को भी ध्यान में रखना जरूरी है। इसके साथ-साथ प्रजनन-कार्य द्वारा किस प्रकार उस स्थान के पशुओं की उन्नति की जा सकती है, इस विषय पर भी प्रकाश डाला है। कारण कि इस जानकारी के अभाव में पशु-उन्नति का कार्य अधूरा ही होगा। उपर्युक्त क्रम से भारत के विभिन्न प्रदेशों के पशुओं का वर्णन आगे दिया गया है।

: २ :

केरल-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश में मद्रास प्रदेश का दक्षिणी-पश्चिमी तटवर्ती इलाका, जो कन्याकुमारी से त्रिवेन्द्रम और कोचीन तक फैला हुआ है, सम्मिलित है। यह सारा इलाका प्रायः पहाड़ी है। यहां की घाटियों तथा समुद्र-तटीय भागों में प्रायः दुमट और चिकनी मिट्टी पाई जाती है। इस इलाके में वांछित खनिज पदार्थों की प्रायः कमी होती है। समुद्र-तट के निकट के इलाके में सम जलवायु पाया जाता है। तापक्रम करीब ५० से १०० डिग्री फारेनहाइट समझना चाहिए। यहां नमी विशेष रूप से पाई जाती है। प्रतिवर्ष औसतन १०० इंच तक वर्षा होती है। यहां अन्य चीज़ों के अलावा धान की खेती विशेष रूप से होती है। पशुओं को चराई पर्याप्त मात्रा में मिल जाती है ; परन्तु यहां का चारा और घास पौष्टिक नहीं होता, इसलिए इस इलाके के पशुओं का अस्थिपंजर और डील-डौल छोटा होता है और दूध देने तथा कार्य करने की शक्ति कम होती है। इस इलाके में पास के मद्रास के इलाके के पशुओं से मिलते-जुलते तथा पहाड़ी और इन पशुओं के मिश्रित पशु होते हैं। ये पशु मद्रास-प्रदेश के मध्यस्थ भाग के पशुओं की अपेक्षा निकम्मे और छोटे कद के होते हैं।

यहां पशुओं की उन्नति के लिए कोई विशेष कार्य हुआ हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। जहां कहीं थोड़ा-बहुत प्रयत्न भी किया गया है, वहां उसका कोई विशेष परिणाम नहीं हुआ है।

इस प्रदेश के रहनेवाले प्रायः चावल खानेवाले तथा मांसाहारी होते हैं। अधिकतर यह इलाका पहाड़ी है, इस कारण यहां न तो अधिक

खेती होती है और न बैलों की ही अधिक आवश्यकता पड़ती है। इनकी दूध, घी तथा यातायात-सम्बन्धी जो थोड़ी-बहुत आवश्यकताएं होती हैं, वे इस इलाके में उपलब्ध होनेवाले पशुओं से जैसे-तैसे पूरी हो जाती हैं, फिर भी इस इलाके के मनुष्यों की आवश्यकताओं को अच्छी तरह पूरा करने तथा स्वास्थ्य-वृद्धि के लिए और खेती-उद्योग आदि की दृष्टि से इस इलाके के पशुओं की उन्नति करना परम आवश्यक है। इस दृष्टि से यहां के पशुओं में अधिक दूध देने और अधिक कार्य करने की क्षमता बढ़ानी होगी।

रहने का स्थान—केरल-प्रदेश तथा इससे लगे हुए इलाके में काफी पशु पाये जाते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—केरल में प्रायः पहाडी जाति के पशु हैं। यहां पशुओं की वंशोन्नति के लिए कोई विशेष कार्य हुआ प्रतीत नही होता है। कही-कही समुचित चुनाव और छंटाव द्वारा इनकी उन्नति करने की चेष्टा की गई है, किन्तु उसका कोई विशेष परिणाम नही हुआ है। इन पशुओ के बारे मे यह कहा जा सकता है कि ये केरल-प्रान्त से लगे हुए मद्रास के मध्य भाग के पशुओं का समिश्रण हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल और कद के छोटे होते है। इसलिए इन पशुओं की आकृति, प्रकृति, कमर, पेट, छाती, सिर, माथा, सींग, मुंह, नाक, कान, गर्दन, थुई, कूल्हे, ऐन, थन, पूछ आदि पहाडी पशुओं तथा आसपास के पशुओं से प्रभावित और मिलते-जुलते होते है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां औसत तापक्रम ५०° से १००° फा० और वर्षा १०० इंच तक समझनी चाहिए। यह प्रदेश अत्यधिक वर्षा का पहाड़ी प्रदेश है। यहां घाटियों में खेती होती है। धान विशेष रूप से उत्पन्न किया जाता है। चराई साधारणतया अच्छी मिलती है। वांछित खनिज पदार्थों की कमी के कारण यहां की घास तथा चारा कम पौष्टिक होता है। इसलिए यहां के पशुओं का

अस्थिपंजर और डीलडौल विकसित नहीं हो पाता है और वे बहुत कम दूध देते हैं।

गाय और बैल के गुण—गाएं बहुत कम दूध देती हैं। ये मुश्किल से प्रतिदिन १-२ सेर दूध देती हैं। बैल इस इलाके की स्थिति के अनुसार छोटे कद के होते हुए भी खेती और बैलगाड़ी का काम मजे से करते हैं।

उन्नति के उपाय—आरम्भ में समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली द्वारा इनके प्रजनन का कार्य होना चाहिए। बाद में यदि इस इलाके की दूध की आवश्यकता पूरी न हो पाये या बैलों से चालक शक्ति पर्याप्त मात्रा में न मिल सके, तो इनको पूरा करने के लिए पशु-विशेषज्ञों की राय से अधिक दूध देनेवाली या अधिक चालक शक्ति उत्पन्न करनेवाली अथवा दोनों गुण रखनेवाली जाति के पशुओं का आवश्यकतानुसार संयोग कराकर, दोनों गुण पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध किये जा सकते हैं। इस कार्य के लिए श्री, डांगी या निमारी जाति के पशु ठीक हो सकते हैं।

: ३ :

मद्रास-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश में कन्याकुमारी से केरल के पूर्वी भाग और पूर्वी समुद्र-तट के बीच का भाग, उत्तर-पूर्व में मद्रास तक और उत्तर-पश्चिम में मैसूर-प्रदेश तक का इलाका सम्मिलित समझना चाहिए। इस प्रदेश में सब प्रकार की भूमि मिलती है। तटवर्ती इलाके की भूमि काले रंग की बलुई दुमट-जैसी होती है, जिसमें अत्यधिक वर्षा होने पर भी पौधों को बढ़ोतरी के लिए पर्याप्त मात्रा में नमी प्राप्त नहीं होती। यहां तटवर्ती और इस प्रदेश के मध्य भाग के बीच की भूमि, जो समुद्र-तट से दूर है, खूब उपजाऊ है, शेष भाग में साधारण भूमि है। यहां करीब-करीब संपूर्ण क्षेत्र में वांछित खनिज पदार्थों की कमी पाई जाती है। गर्मियों में यहां गर्मी बहुत अधिक पड़ती है, परन्तु सर्दियों में विशेष सर्दी नहीं पड़ती। कुछ भाग को छोड़कर इस इलाके में वर्षा खूब होती है। इस इलाके में चराई तथा पशुओं की खिलाई-पिलाई साधारण होती है, कहीं-कहीं अच्छी भी होती है। इस कारण तथा वांछित खनिज पदार्थों की कमी के कारण यहां के पशु साधारण डील-डौल के होते हैं।

यहां पर प्रायः कांग्यम, बरगुर और आलमबाड़ी जाति के गाय-बैल मिलते हैं। मध्य भाग में प्रायः इनके मिश्रण पाये जाते हैं। मद्रास के इलाके में इनकी नैलोर जाति के पशु भी पाये जाते हैं। पालीकोटाई के इलाके में वहां के पट्टीदार ने इस इलाके की आवश्यकता को पूरा करने के लिए इतनी खूबी से पशु-प्रजनन का कार्य किया कि उसने कांग्यम नाम की एक उत्तम नसल ही तैयार कर ली थी। परन्तु प्रदेश के अन्य किसी क्षेत्र में इस कार्य में कोई सफलता नहीं मिली। इस प्रदेश में बैल जितने अच्छे,

मजबूत और काम करनेवाले होते हैं, गायें उतनी अच्छी नहीं होतीं। वे साधारण दूध देनेवाली होती हैं।

इस प्रदेश के निवासी केरल-प्रदेश के निवासियों की अपेक्षा कम मांसाहारी होते हैं। यहां के निवासी अधिकतर हिन्दू-धर्म में विशेष आस्था रखनेवाले होते है और उनका रहन-सहन सादा होता है। ये दूध, दही के खानेवाले तथा मेहनती होते हैं। इनका मुख्य उद्यम खेती-बाडी करना है। लोग पशु-पालन के कार्य में भी काफी दिलचस्पी रखते हैं।

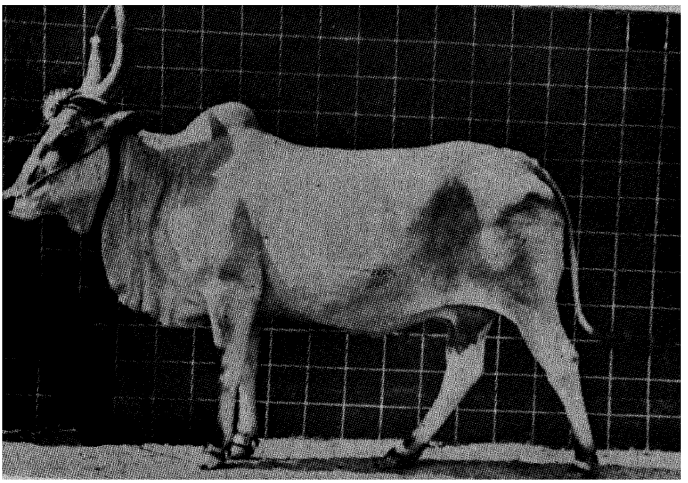
जैसा कि ऊपर बताया गया है इस इलाके के पशु कांग्यम नसल के पशुओं के अतिरिक्त अच्छी श्रेणी के पशुओं में नहीं आते हैं, इसलिए इनकी उन्नति करना अत्यन्त आवश्यक है। खास करके दूध देने की क्षमता बढ़ानी परमावश्यक है, क्योंकि इस इलाके के निवासियों का स्वास्थ्य और काम करने की शक्ति दूध और उससे बने पदार्थों के अधिकाधिक उपयोग पर ही निर्भर है। यहां के पशुओं का विवरण नीचे लिखे अनुसार है :

१. कांग्यम

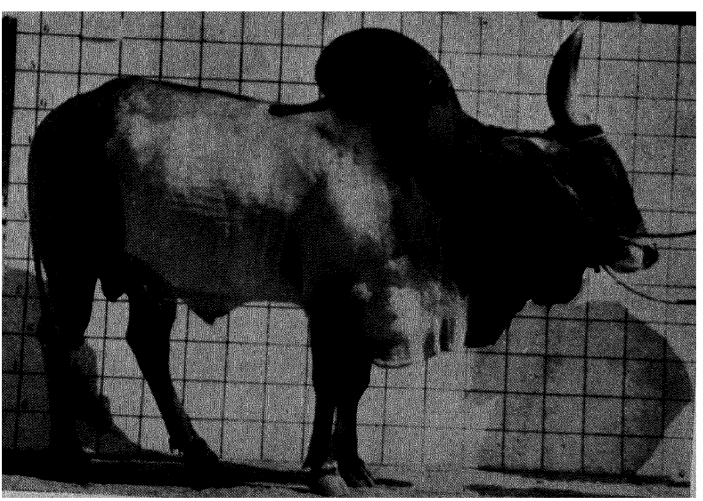
रहने का स्थान—ये मद्रास प्रदेश के पशुओं में से हैं। चूकि यह उस इलाके की प्रमुख नसल है, इसलिए इसका अलग विवरण दिया है।

कांग्यम जाति के गाय-बैल कोयम्बटूर के दक्षिण तथा दक्षिण-पूर्वी भागों में पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—भारतवर्ष में १९वीं शताब्दी में प्रमुख नसलोत्पत्ति करनेवाले पालीकोटाई के पट्टीदार ने अपने तरीके से इस नसल को कायम किया है। इन पट्टीदार महाशय का इस जाति के पशुओं पर इतना अधिकार था कि इस जाति के सांड सिवा इस पट्टीदार के और कहीं नहीं मिलते थे; यहां तक कि मद्रास-सरकार ने भी वंशोत्पत्ति के प्रयोग करने के लिए इन्हीं से सांड प्राप्त किये थे। कुछ विशेषज्ञों की राय है कि इस जाति के पशुओं में उत्तरी



कांग्यम नसल की गाय



कांग्यम नसल का सांड

भारतवर्ष के भूरे पशुओ के खून का प्रवेश कराया गया है। यह कहां तक ठीक है, कहना मुश्किल है। परन्तु आज इस नसल के पशुओं के बारे में यह कहा जा सकता है कि सच्चे मानों मे वे विशेष नसल के हैं।

शरीर की बनावट, वजन और रंग—इस जाति के पशु मध्यम डीलडौल और कद के होते है। इनका बदन गठीला और हल्का होता है। इनमे गाय का वजन ५५०-६०० पौड, बैल का ६००-६५० और सांड का ६५०-७०० पौड तक होता है। खाल पतली और शरीर से चिपकी हुई होती है। रोआ बारीक होता है। कमर, पेट, छाती साधारण और अमृतमहल नसल के प्रतिरूप होती है। सिर न तो बहुत बडा होता है, न बहुत छोटा। माथा थोडा उठा हुआ होता है। सीग अमृतमहल जाति के पशुओ के समान ऊपर की ओर उठे, दृढ, लम्बे और नुकीले होते है। अन्त मे दोनो सीगो का अन्तर बहुत कम हो जाता है और वे पीछे को घूमते हुए ऊपर को मुड जाते है। चेहरा लम्बा और माथे तथा नाक के बीच मे थोडा दबा हुआ होता है। आख अच्छी विकसित और चेतन होती है। नाक और कान छोटे तथा नोकीले होते है। गर्दन छोटी पर दृढ होती है। गले की झालर छोटी होती है। थुई और कूल्हे साधारण होते है। ऐन कम फैले हुए, खिचे हुए और साधारण होते है। इनके थन छोटे, खुले हुए और कुछ टेढे होते है। पूछ बहुत लम्बी नही होती। मूतना छोटा और खिचा हुआ होता है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—प्रायः पहाडी पत्थरों के, रेतीले-दुमट मिटटी के और कम नमीवाले इलाके मे ये पशु पाये जाते है। यहा तापक्रम ५५° से १०८° फा० और औसत वर्षा ४० इंच समझनी चाहिए। इन पशुओं का पालन-पोषण खुले मैदानों में, गोचरों मे, चराई और बाडो में होता है, इस कारण ये स्वस्थ और फुर्तीले होते हैं। इस इलाके मे कुछ वाछित खनिज पदार्थों की कमी है, इसलिए इनका शरीर छोटा है, परन्तु अच्छी देखभाल और खिलाई-पिलाई के कारण गठीला है। हल्के होने के कारण ये चलने मे तेज और फुर्तीले होते हैं।

गाय और बैल के गुण—गायों का दूध कम होता है। चुनैता गायें ५ सेर से ६ सेर तक दूध देनेवाली पाई जाती हैं। बहुत अच्छी गाय ८-१० सेर दूध देती भी देखी गई है। ये पहले-पहल लगभग ४॥-५ वर्ष में ब्याती हैं, बाद में १-१॥ वर्ष में। बैल बोझ खींचनेवाला, फुर्तीला, मजबूत और देर तक काम करनेवाला होता है। वह १० से १२ वर्ष तक काम कर सकता है। छोटे कद का होने के कारण इसके पालने में बहुत व्यय नही होता।

उन्नति के उपाय—इस नसल के पशुओं का दूसरी भिन्न नसल के पशुओं से संयोग कराना ठीक नही होगा। दूध बढाने के लिए तथा किसी अन्य गुण का इस नसल में प्रवेश करने के लिए, विजातीय संयोग कराने से इस नसल को, जोकि आज प्रतिष्ठित या भली प्रकार स्थापित नसल है, हानि हो सकती है। इसलिए इस जाति के पशुओं के अच्छे चुने हुए वांछित गुणवाले पशुओं के आपस के संयोग से और बुद्धि-युक्त चुनाव और छंटाव द्वारा ही पशु-उन्नति करनी चाहिए।

२. बरगुर

रहने का स्थान—ये पशु प्राय: बरगुर पहाड़ी के इलाके में कोयम्बटूर के जिले में मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु आलमवाड़ी और अमृतमहल जाति के पशुओं से प्रभावित हैं और मिश्रित पशुओं की श्रेणी में आते हैं; परन्तु अब बहुत दिनों तक एक ही प्रकार का प्रजनन-कार्य और भिन्न जाति के पशुओं से संयोग न होने के कारण इन पशुओं में इनके गुण प्रतिष्ठित होगये हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—मैसूर जाति के पशुओं से मिलते-जुलते और उनके प्रतिरूप ये पशु मंझले छोटे कद के, हल्के और गठीले बदन के, बड़े तेज मिजाज के और बिदकनेवाले होते हैं। इनमें गाय का वजन लगभग ५५०-६०० पौंड बैल का ६००-६५० पौंड और

सांड का ६५०-७०० पौड तक होता है। इनकी खाल और रोआं बीच की जाति का होता है। इनका रंग गेरुआ और सफेद एवं सफेद-लाल दाग लिये हुए होता है। हल्के भूरे रग के पशु भी देखने मे आते है। कमर सीधी, पेट खासा बड़ा और छाती बीच के दर्जे की विकसित होती है। सिर लम्बा और माथा उभरा हुआ अमृतमहल पशुओं से मिलता-जुलता होता है। सीग मैसूर जाति के पशुओ की तरह ऊपर को जाकर पीछे को मुडते है, फिर आगे को घूमते हुए सिरे पर नुकीले हो जाते है। इनका चेहरा लम्बा होता है, परन्तु मैसूर के पशुओं की तरह से उभरा हुआ नही होता। आख बीच की जाति की और चेतन होती है। नाक साधारण विकसित होती है। कान बीच के दर्जे के होते है। गर्दन बहुत बडी तो नही होती, परन्तु अमृतमहल-जैसी मजबूत और मोटी होती है। गलकम्बल छोटा और कम लटकवा होता है। थुई साधारण परन्तु विकसित होती है। कूल्हे मजबूत होते है। ऐन और थन अमृतमहल पशुओ के समान होते है। पूछ छोटी और गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा और कम लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा का इलाका पहाडी है। वर्षा काफी होती है। वर्षा का औसत ४० इच प्रति-वर्ष और तापक्रम ५५° से १०६° फा० समझना चाहिए। वाछित खनिज पदार्थों की यहा भी बहुत कमी है। खेती कम होती है। पशु प्राय: चराई पर रहते है, इसलिए इन पशुओ का अस्थिपजर और शरीर पूरी तौर से विकसित नही हुआ है।

गाय और बैल के गुण—गाय बहुत कम दूध देनेवाली है, यहां तक कि इनको अक्सर दुहा भी नही जाता। ये प्रतिदिन प्राय: १-२ सेर दूध देती है। अच्छी गाय अधिक-से-अधिक २-३ सेर दूध देती है। ये पहले-पहल ५ वर्ष मे ब्याती हैं। दूध थोड़े ही दिन देती हैं और फिर बहुत दिन तक दूध से सूख जाती है। बैल अपने डीलडौल के अनुसार फुर्तीले, मजबूत, दमदार और तेज चलनेवाले होते हैं।

उन्नति के उपाय—इस जाति की गाय कम दूध देनेवाली होती है। यदि उन्हें हरा चारा भली प्रकार खिलाया जाय, तो उनका दूध बढ़ सकता है। वंशोन्नति का कार्य समुचित चुनाव और छटाव द्वारा करना चाहिए। यदि इससे इनके दूध देने की शक्ति पर्याप्त मात्रा में न बढ़ सके तो चुनैता, अमृतमहल या कांग्यम जाति की अधिक दूध देने वाली गायों के नर (सांड) से इनका संयोग कराकर इनमें दूध देने का गुण बढ़ाया जा सकता है।

३. आलमवाड़ी

रहने का स्थान—ये पशु मद्रास प्रान्त में सेलम और कोयम्बटूर जिलों के मैसूर से लगे हुए उत्तरी भागों में पाये जाते हैं। प्रायः जंगलों में पाले जाते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये कोई खास नसल के पशु नही है, आसपास के इलाके के पशुओ के मिश्रण है। हल्लीकर के समान अमृत-महल नसल के पशुओं से विशेष रूप से प्रभावित है। अब इनके गुण इनमें काफी प्रतिष्ठित होगये हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु मंझले डील-डौल के और कद में ४॥-५ फुट ऊंचे होते हैं। इनमे गाय का वजन लगभग ६००-७०० पौंड, बैल का ७००-७५० पौड और सांड का ७५०-८०० पौंड तक होता है। इनकी खाल पतली और रोआं सफेद रंग का होता है। इनका रग सफेद, लोहिया, भूरा और हल्का गेरुआ तथा गहरा गेरुआ होता है। सांड भूरे और गहरे भूरे रंग के होते हैं। कमर सीधी, पेट साधारण तथा दोनों तरफ फैला हुआ और छाती काफी विकसित होती है। सिर मैसूर नसल के पशुओं के सदृश होता है। माथा चौड़ा, सींग के पास का हिस्सा कम चौड़ा होता है और में आरम्भ से अन्त तक बीच दबा हुआ होता है। इनके सींग २-२॥ फुट तक लंबे तथा अमृतमहल पशुओं के सींगों की तरह पीछे को मुड़े हुए होते हैं और सिरे पर नोकीले

होते हैं। चेहरा लम्बा और पतला होता है। आंखें खासी अच्छी विकसित और लोहिये रंग की होती हैं। भौहो पर सफेद बाल होते हैं। नाक और कान अमृतमहल पशुओ की तरह होते हैं। गर्दन मझले नाप की और खूब मजबूत होती है। गलकम्बल कम लटकवा और बीच की जाति का होता है। थुई विकसित होती है। खासकर के साडो की थुई काफी भारी होती है। कूल्हे मजबूत होते हैं। ऐन और थन अमृतमहल पशुओं के समान परन्तु कुछ छोटे होते है। पूछ मझले नाप की और साधारण गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा और कम लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा की जलवायु पहाडी इलाके की जलवायु-जैसी होती है। यहा वर्षा अधिक होती है, परन्तु पानी जल्दी बह जाता है। वर्षा यहा औसतन ४५ इच प्रति-वर्ष और ५०° से १०३° फा० तापक्रम समझना चाहिए। यहा खनिज पदार्थो की कुछ कमी है। पशु प्रायः चराई पर ही रहते है। इन्हे ऊपर से जो चारा दिया जाता है, वह बहुत कम पौष्टिक होता है। इसलिए इनका विकास भली प्रकार नही हो पाता और दूध कम देते है।

गाय और बैल के गुण—गाये दूध देने मे अच्छी नही होती। ये प्रतिदिन लगभग २ सेर दूध देती है। ये पहली बार लगभग ५ वर्ष मे ब्याती है, बाद मे १॥-२ वर्ष मे ब्याती है। बहुत थोडे ही दिन दूध देती है। बैल अपने कद के अनुसार बडे मजबूत और फुर्तीले होते है। इनकी यह विशेषता है कि ये सहनशील और देर तक काम करने वाले होते है।

उन्नति के उपाय—इस जाति की गाय कम दूध देती है, परन्तु बैल खूब मजबूत और काम करनेवाले होते है। इसलिए यथासम्भव पशुओं को अधिकाधिक हरा चारा खिलाने का प्रबन्ध करके काग्यम या अमृतमहल जाति की चुनी हुई और अधिक दूध देनेवाली गाये मगवाकर इस इलाके की खूब दूध देनेवाली गायो का नर-संतति (सांडो) से संयोग कराकर प्रजनन-कार्य करना चाहिए, ताकि शीघ्रता से सहूलियत

के साथ इन पशुओं में अधिक दूध देने की क्षमता, बिना बैलों की उपयोगिता को घटाये हुए, पैदा हो सके। भविष्य में इनकी संतति यदि अच्छी होती है तो उनके आधार पर पशु-प्रजनन का कार्य करने से उनकी उन्नति हो सकती है।

: ४ :

मैसूर-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश के उत्तर-पश्चिम में महाराष्ट्र, उत्तर-पूर्व में आंध्र-प्रदेश, दक्षिण-पूर्व में मद्रास और पश्चिम में मलाबार स्थित है। इस इलाके की भूमि पहाड़ी इलाके-जसी दुमट और कहीं-कहीं चिकनी तथा पथरीली है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी उतनी नहीं है। गर्मियों में साधारण गर्मी और सर्दियों में साधारण सर्दी होती है। यहां वर्षा ३०-४० इंच होती है, फिर भी यहां नमी रहती है। इस इलाके में धान और रागी की खेती खूब होती है। अन्य चीजें भी बोई जाती हैं, जिनका चारा पशुओं के काम में आता है। पशुओं के लिए चराई भी काफी मिलती है, इसलिए इस इलाके में पशुओं का पालन-पोषण अच्छी तरह होता है और उनका पर्याप्त विकास हुआ है। यहां प्रसिद्ध अमृतमहल नसल और हल्लीकर जाति के पशु मिलते हैं। इस प्रदेश के तटवर्ती इलाके में आलमवाड़ी तथा अन्य जाति के पशु भी कहीं-कहीं पाये जाते हैं। यहां पशु-प्रजनन और नसलोत्पत्ति का कार्य भी हुआ है। इस इलाके में यातायात और खेती आदि का काम करने के लिए बैलों की विशेष रूप से मांग रहती है, इसलिए यहां अबतक पशु-प्रजनन का कार्य बैलों को अधिकाधिक उत्तम बनाने की दृष्टि से ही किया गया है। हैदरअली और टीपू सुल्तान ने पशु-उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया था और अपनी सैनिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए भारी तोपखाने को आसानी और शीघ्रता से एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए अच्छे बैलों को प्राप्त करने की दृष्टि से पशु-प्रजनन का कार्य किया तथा अमृतमहल नाम की एक अच्छी नसल कायम की। अतः यहां गाय की

अपेक्षा बैल बहुत अच्छे होते हैं।

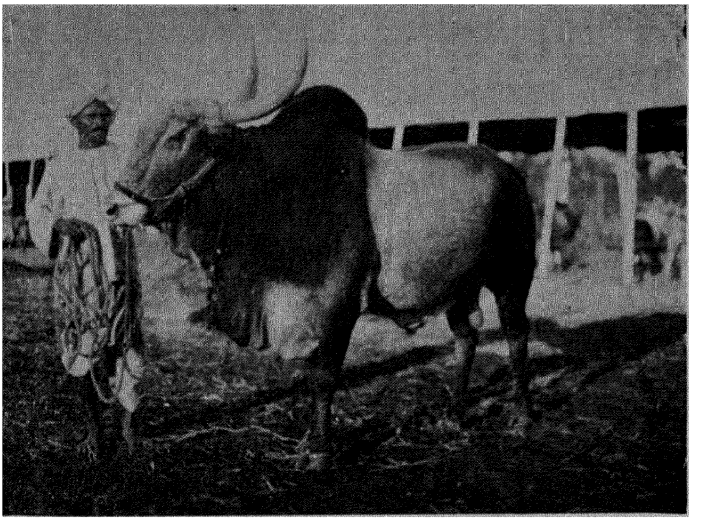
यहां के निवासियों का रहन-सहन, स्वभाव आदि साधारण हैं। ये लोग दूध तथा दूध से बने पदार्थों के बहुत शौकीन होते हैं। इनका मुख्य उद्यम खेती-बाड़ी है। ये लोग पशुओं की देखभाल और खिलाई-पिलाई अच्छी करते हैं। इस इलाके के बैल खूब काम करनेवाले होते हैं, परन्तु गायें अपेक्षाकृत बहुत कम दूध देती हैं। इसलिए यहां पशु-प्रजनन का कार्य ऐसी दृष्टि से होना चाहिए, जिससे गायों की दूध देने की क्षमता बढ़े और बैलों की कार्य करने की शक्ति न घटे। यहां की जलवायु, चराई, खेती तथा यहां के निवासियों के पशु-पालन के शौक को देखते हुए पशुओं की उन्नति का कार्य बखूबी हो सकता है।

१. अमृतमहल

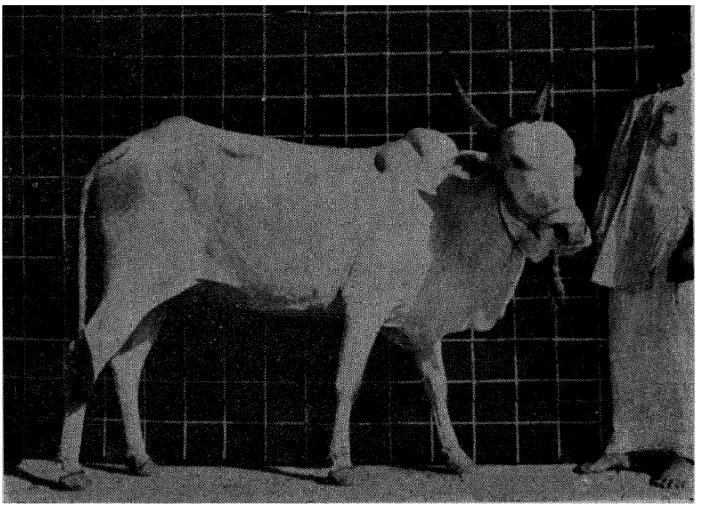
रहने का स्थान—इस नसल के पशु प्रायः दक्षिण भारत के मैसूर-प्रदेश में तथा उसके आसपास पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—टीपू सुल्तान को अपने तोपखाने को शीघ्रता से एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए तगड़े और तेज चलनेवाले बैलों की जरूरत थी, उसे पूरा करने के लिए उसने पशु-प्रजनन का कार्य कराया। इसमें उसे सफलता मिली। इसके फलस्वरूप अमृतमहल नसल अस्तित्व में आई।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—इस नसल के पशु बड़े हट्टे-कट्टे, मजबूत, चौरस, लम्बे और मंझले कदवालों से कुछ ऊंचे कद के होते हैं। इनमें गाय का वजन ७०० पौंड, बैल का ८०० पौंड और सांड का ८५० पौंड तक होता है। इनकी खाल और रोआं बीच के दर्जे का होता है। गाय अधिकतर सफेद रंग की होती है और बैल तथा सांड सफेद और भूरे दोनों रंग के होते हैं। सिर, गर्दन और थुई के पास भूरा या काला रंग होता है। कमर आम तौर से सीधी और साधारण चौड़ी होती है। पेट साधारण तथा दोनों तरफ फैला हुआ होता है।



अमृतमहल नसल का सांड



अमृतमहल नसल की गाय

छाती काफी चौडी होती है। सिर बहुत भीड़ा, ज़रा उठा हुआ और पीछे को ढलकता हुआ होता है। माथा चौडा, परन्तु सिर की तरफ भीडा और बीच मे आरम्भ मे अन्त तक कुछ दबा हुआ होता है। इनके सीग लम्बे, नोकीले तथा कमान की तरह पीछे को आधे झुके रहते हैं। चेहरा लम्बा, आखे चमकीली, नाक उभरी हुई और कान मझले होते हैं। गर्दन विशेष लम्बी नही होती बल्कि मझले आकार की होती है। झालर साधारण और कम लटकवां होता है। थुई उभरी हुई और खासी भारी होती है। कूल्हे मजबूत और थोडे फैले हुए होते है। ऐन छोटे और कम विकसित तथा थन न बहुत बडे और न बहुत छोटे, बल्कि साधारण होते है। पूछ बहुत लम्बी नही होती। यह साधारण गुच्छे-वाली होती है। मूतना बहुत कम लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्राय ४८° से १००° फा० और वर्षा ३०-४० इच प्रतिवर्ष होती है। यहा वाछित खनिज पदार्थो की कमी अधिक नही है। यहा की जलवायु और पहाडी धरती का इस नसल पर अच्छा असर हुआ है। इस इलाके में गोचरो मे चरने तथा चारे की अन्य सुविधाओ के कारण इनके शरीर का विकास खासा हुआ है।

गाय और बैल के गुण—गाय ३-४ सेर दूध देती है। पहली बार ५ या ६ वर्ष मे ब्याती है और बाद मे १ से १॥ वर्ष मे ब्याती रहती है। इनका दूध अच्छा होता है। इस जाति के बैल बडे तेज, फुर्तीले और गुस्सैल तथा वजन खीचने मे अति उत्तम और देर तक काम करनेवाले होते है। भारतवर्ष मे इस जाति के बैल सब गुणो को मिलाकर सबसे अच्छे कहे जा सकते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की आवश्यकता की दृष्टि से ये जानवर बहुत अच्छे और उपयोगी है। यदि इनमे दूध देने का गुण बढा दिया जाय तो क्या कहना! अत: इस दृष्टिकोण से विधिपूर्वक बुद्धियुक्त चुनाव और छटाव द्वारा इनकी वशोन्नति का कार्य बिना किसी दूसरी

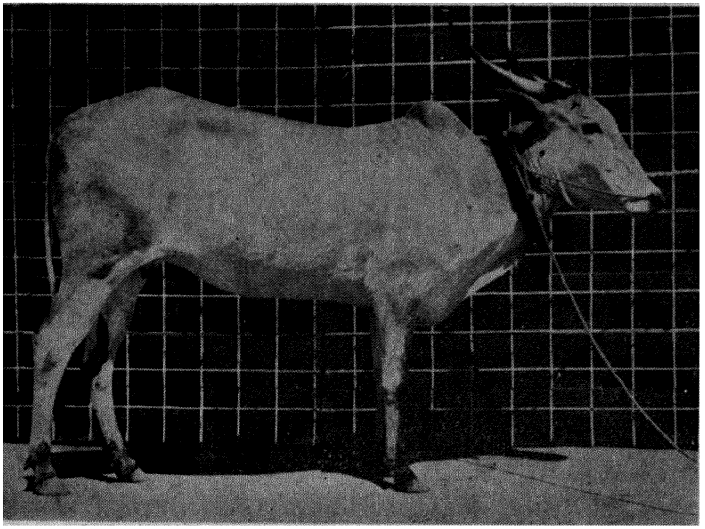
नसल के संयोग के करना चाहिए। ऐसा करने से ये उन्नति कर जायंगे। ठीक कद और अच्छे वांछित गुणवाली कांग्यम नसल की गायों और अमृतमहल के सांडों का संयोग कराने से जो उन्नत संतति उत्पन्न होगी, उसके आधार पर भविष्य में पशु-प्रजनन का कार्य करने से अच्छे पशु मिल सकते है।

२. हल्लीकर

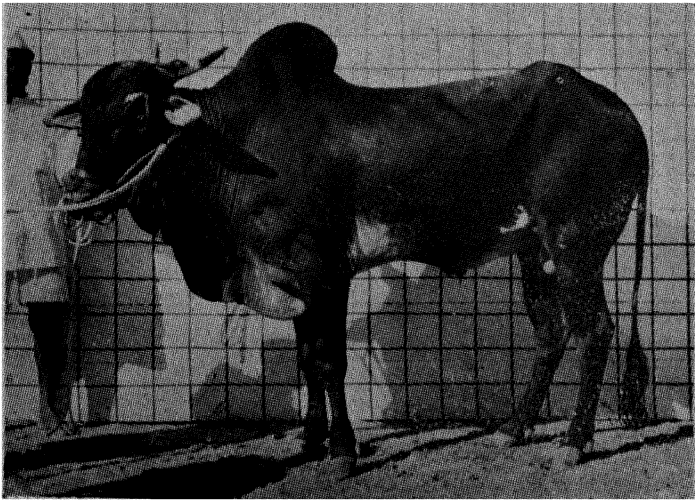
रहने का स्थान—प्राय: टमकर, हसन और मैसूर-प्रदेश के मैसूर जिले में पाये जाते हैं। ये मैसूर-प्रदेश और कृष्णा नदी-घाटी के बीच में भी मिलते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ऐसा मालूम होता है कि इनकी नसलोत्पत्ति के कार्य मे दूध बढ़ाने का प्रयत्न किया गया है। मैसूर नसल के पशु इनके प्रतिरूप हैं। कृष्णा नदी-घाटी के पशुओं का कुछ असर सीमा पर के पशुओं पर पड़ा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—हल्लीकर जाति के पशु मैसूर नसल के पशुओं के प्रतिरूप होते हैं और उन्ही की तरह उतने तो नहीं, परन्तु कुछ कम हट्टे-कट्टे, मजबूत, चौरस, लम्बे और मंझले क़द से कुछ बड़े क़द के होते हैं। इनमें गाय का वजन लगभग ७०० पौड, बैल का ७५०-८०० पौंड और सांड का ८०० पौड तक होता है। इनकी खाल और रोआं बीच के दर्जे से कुछ बारीक होता है। इनका रंग प्राय: सफेद होता है। कमर साधारण, अमृतमहल के पशुओं से मिलती-जुलती होती है। पेट साधारण फैला हुआ, छाती मंझले दर्जे की, सिर उभरा हुआ होता है। माथा कुछ चौड़ा परन्तु बीच में चिरा हुआ-जैसा होता है—यह इस जाति के पशु की एक विशेषता है। चेहरा लम्बा, आंख छोटी, नाक कम विकसित, नथने साधारण परन्तु ज़रा उभरे हुए होते हैं। कान बीच के दर्जे के कम लटकवां होते हैं। गर्दन विशेष लम्बी नहीं होती, न झालर विशेष लटकवां होते है। थुई अमृतमहल की भांति



हल्लीकर नसल की गाय



हल्लीकर नसल का सांड

विशेष उभरी हुई नहीं होती। कूल्हे मजबूत होते हैं। गायों के ऐन और थन साधारण होते हैं। पूंछ साधारण और गुच्छेदार होती है। मूतना बदन से सटा हुआ होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ४८° से १०२° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष ४० इंच के करीब होती है। मैसूर जाति के पशुओं की तरह इनपर भी जलवायु तथा धरती का असर अच्छा हुआ है। इस इलाके में अच्छा चारा-दाना मिलने के कारण दूध देने में ये अमृतमहल जैसे ही होते हैं, परन्तु ये उतने फुर्तीले नहीं होते।

गाय और बैल के गुण—इस जाति की गाय दूध देने में अमृतमहल जैसी होती है, प्रतिदिन प्रायः ३-४ सेर दूध देती है। इनका दूध साधारण मक्खनवाला होता है। इस नसल में दूध बढ़ाने का प्रयत्न किया गया था। उसमें सफलता भी हुई है, परन्तु ययोचित रूप से देर तक कार्य न होने के कारण पूर्ण सफलता न हो सकी। ये पहले-पहल ४।।-५ वर्ष में ब्याती हैं, बाद में १।-१।। वर्ष में ब्याती हैं। बैल अमृतमहल-जैसे अच्छे नहीं होते, परन्तु खूब काम करनेवाले और बोझा खींचनेवाले होते हैं।

उन्नति के उपाय—इन पशुओं में दूध देने का गुण, बिना बाहर के पशुओं के संयोग के, बढ़ाया जा सकता है। पहले भी इसमें कामयाबी हुई और अब भी बुद्धियुक्त चुनाव और छंटाव के साथ काम किया जाय तो यह एक उत्तम जाति की नसल बन सकती है। कांग्यम और कृष्णा-घाटी के पशुओं के संयोग से अधिक गुणवान संतति शीघ्र ही प्राप्त की जा सकती है, परन्तु यह कार्य पशु-विशेषज्ञों की राय से और उनकी देखभाल में ही होना चाहिए।

: ५ :

आंध्र-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश में मद्रास से ऊपर समुद्र के किनारे-किनारे उड़ीसा तक, मध्य-प्रदेश में गोदावरी नदी तथा छिंदवाड़ा और बरार तक, उत्तर-पश्चिम में बम्बई-प्रदेश से सटा हुआ इलाका और वहां से बम्बई का पूर्वी भाग, शोलापुर होते हुए मैसूर तक तथा आंध्र से लगा हुआ मैसूर-प्रदेश का उत्तरी-पूर्वी भाग का इलाका सम्मिलित है। इस प्रदेश में उत्तरी पनेर, कृष्णा, गोदावरी और तुंगभद्रा नदी, जो कर्नूर के पास कृष्णा नदी में गिरती हैं, बहती है। समुद्र-तट तथा नदियों के आसपास की भूमि उपजाऊ है। यहां जहां-तहां पथरीली और बलुई भूमि भी पाई जाती है। इस प्रदेश में वांछित खनिज पदार्थों की कुछ कम कमी है।

यहां गर्मियों में बहुत गर्मी (११२° फा०) और सर्दियों में कम सर्दी (५७° फा०) होती है। यहां खुश्क इलाकों को छोड़कर प्रतिवर्ष प्रायः वर्षा ४०-५० इंच होती है। समुद्र-तट के भागों में तो इतनी अधिक वर्षा होती है कि बाढ़ के कारण प्रति-वर्ष फसलें खराब हो जाती हैं। इस प्रदेश के समुद्रतटीय इलाके में वर्षा ऋतु में दक्षिणी-पश्चिमी मानसूनों के अलावा जाड़ों में भी उत्तरी-पूर्वी मानसूनों से वर्षा होती है, जिससे काफी लाभ होता है।

यहां नदियों की घाटियों में और मैदानी इलाकों में खास करके समुद्र-तटीय इलाके नैलोर, बैजवाड़ा और उसके आसपास के क्षेत्र में खूब अच्छी खेती होती है। यहां चरागाह विशेष नहीं हैं। पशुओं को प्रायः बोई हुई फसलों पर ही निर्भर रहना पड़ता है। गर्मियों में इस प्रदेश के खुश्क इलाके में कुछ भी चरने को नहीं मिलता। अलबत्ता कृष्णा-घाटी

मे खासी अच्छी चराई मिल जाती है। खेती अधिक होने तथा खिलाई-पिलाई अच्छी होने के कारण यहां की गाये खूब दूध देती है। बैल भी मजबूत, भारी, काम करनेवाले तथा उपयोगी होते हैं। उसी प्रकार वालाघाटी के दोनों तरफ भी अच्छी चराई और घास मिलती है और वहां के देओनी जाति के पशु अच्छे होते है।

इस इलाके में मुख्यतया अगोल (नैलोर), कृष्णा-घाटी के पशु और देओनी नसल के उत्तम पशु मिलते है। यहां मैसूर-प्रदेश से लगे हुए तट-वर्ती इलाके में हल्लीकर, बम्बई-प्रदेश से लगे हुए तटवर्ती इलाके में खिलारी और डांगी तथा मध्यभारत की छिंदवाडा और बस्तर रियासतो के पशुओं से प्रभावित और मिश्रित पशु भी मिलते है। जिस प्रकार पजाब उत्तम पशुओ के लिए प्रसिद्ध है, उसी प्रकार आध्र प्रदेश भी अच्छे पशुओं के लिए प्रसिद्ध है। इस प्रदेश की गाये बहुत दूध देनेवाली और बैल बहुत उपयोगी समझे जाते हैं। यहा के पशु सूखा चारा खूब मन से खाते है। बैल भारी बोझ खीचनेवाले, परन्तु धीमे चलनेवाले होते है। यहां के पशुओं मे बीमारी से मुकाबला करने की शक्ति अधिक होती है।

यहा भूतकाल मे पशु-प्रजनन के कार्य मे सफलता प्राप्त होने के कारण उत्तम पशु मिलते है। आंध्र-प्रदेश का इलाका काफी विस्तृत है। इस कारण यहा के निवासियों का रहन-सहन भिन्न-भिन्न भागो मे अलग-अलग है। यहां के निवासी विशेषकर खेती-वाडी और पशु-पालन पर निर्भर करते है। इसलिए वे पशु-पालन के कार्य मे खूब दिलचस्पी लेते हैं और उनकी देखभाल तथा खिलाई-पिलाई अच्छी तरह करते हैं।

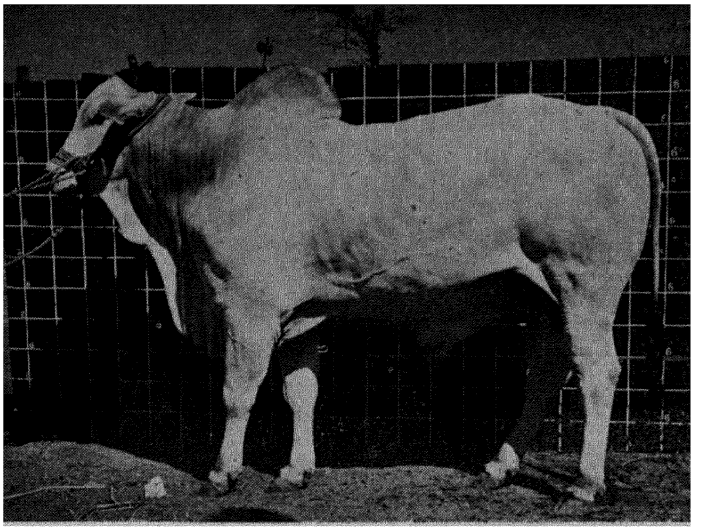
जैसा ऊपर बताया गया है, यहां के पशु दूध देने मे तथा भारी काम करने मे तो अच्छे होते है, परन्तु कुछ धीमे होते है अत: उनमें अधिक, फुर्ती और तेज चलने की क्षमता उत्पन्न करने की आवश्यकता है। इस प्रदेश की विभिन्न जातियों के पशुओं का परिचय नीचे दिया जाता है।

१. अंगोल

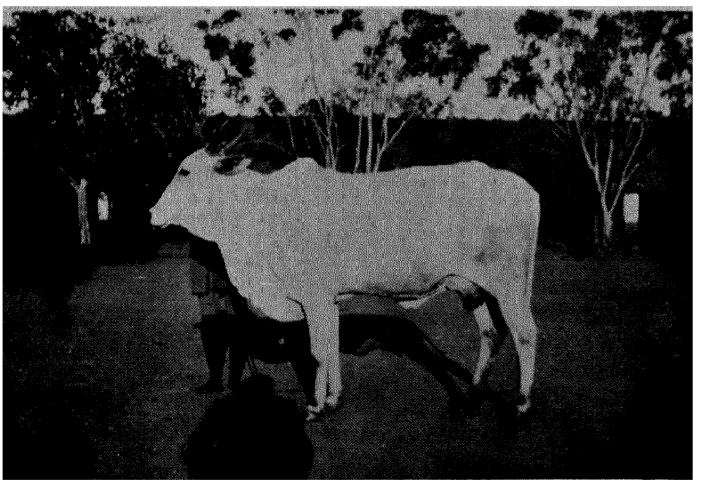
रहने का स्थान—इस नसल के पशु आंध्र-प्रदेश के अंगोल जिले में पाये जाते हैं, तथा नैलोर और गंटूर जिलों में भी मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इस इलाके में मनुष्यों की बस्ती अधिक है और खेती का काम भी खूब होता है। इसलिए खेती तथा दूध दोनों की ही आवश्यकता को पूरा करने की दृष्टि से इनकी वंश-वृद्धि की गई है। इन दोनों आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इनमें अधिक-से-अधिक गुण प्रवेश कराने का प्रयत्न हुआ और इसमें कामयाबी भी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है कि उपर्युक्त लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए उत्तरी भारत के भारी पशु, संभवतः अफगानिस्तान के भगनारी पशुओं, को इधर लाया गया हो और इधर के पशुओं से संयोग कराकर इस नसल को कायम किया गया हो।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—भारत में अंगोल जाति के पशु सबसे भारी और बड़े डील-डौल के होते हैं। कद ऊंचा और शरीर बहुत लम्बा होता है। इनमे गाय का वजन ८५०-९०० पौंड, बैल का ९००-१००० पौंड और सांड का १०००-१२०० पौंड तक होता है। यह उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओं के प्रतिरूप होते हैं। इनकी खाल और रोआं पतला होता है। रंग अधिकतर सफेद होता है। साड के सिर और गर्दन पर भूरा रंग तथा घुटनों पर काला रंग देखने मे आता है। इनकी कमर बहुत लम्बी, पेट खूब फैला हुआ और गहरा, तथा छाती खूब चौड़ी और भरी हुई होती है। सिर और माथा साधारण और कुछ उभरा हुआ होता है। इनके सीग छोटे और उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओं की भांति होते है। चेहरा बड़ा, आंखें मध्यम साइज की और चमकीली होती हैं। नाक विशेष बड़ी नही होती। कान साधारण और लम्बे तथा कम लटकवां और बालोंवाले होते हैं। गर्दन साधारण परन्तु मजबूत होती है। गल-कम्बल बड़ा और लटकवां होता है। थुई कुछ भारी और बड़ी होती है। कूल्हे भारी होते हैं। ऐन बड़े



अंगोल नसल का सांड



अंगोल नसल की गाय

और कम लटकवां होते हैं। थन कुछ बड़े और एक-से होते हैं। पूछ बहुत लम्बी नही होती, परन्तु गुच्छेदार काले रंग की होती है। मूतना बड़ा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—अंगोल के इलाके में खेती की फसले खूब होती है। चरागाह विशेष नही हैं। प्रतिवर्ष ४० इच तक वर्षा होती है। तापक्रम ५७° से ११२° फा० तक होता है। प्रायः वहां के पशु बोई हुई फसलों पर ही निर्भर करते है। यहां की जलवायु और खानपान के प्रभाव के कारण गाये अच्छा दूध देती है। बैल मजबूत, वजनी और खूब बोझ खीचनेवाले होते है, इसलिए इनकी उपयोगिता अधिक है और ये खूब चाव से पाले जाते है।

गाय और बैल के गुण—गाय बहुत दूध देनेवाली समझी जाती है। अच्छी गाय १०-१२ सेर और कोई-कोई तो इससे भी अधिक दूध देती है। यह पहले-पहल लगभग ४॥ वर्ष मे ब्याती है, बाद मे १-१॥ वर्ष मे ब्याती है। बैल बहुत मजबूत होते है। ये पशु सूखा चारा अच्छी तरह खाते है। बैल भारी बोझ खीचनेवाले होते है, परन्तु तेज चलने वाले नही होते। इस जाति के सभी पशुओ की और खासकर सांडों की माग भारत से बाहर अमरीका इत्यादि देशों मे भी है। विदेशी पशुओं के मुकाबले में यहां के पशुओं मे बीमारी से मुकाबला करने की शक्ति बहुत होती है। ये वहा के पशुओं के माफिक वजन मे भारी और दूध देने में खासे अच्छे होते है, इसलिए वहा के पशुओं मे बीमारी से मुकाबला करने का गुण-प्रवेश करने की दृष्टि से उनसे इनका संयोग कराते हैं।

उन्नति का उपाय—इस जाति के पशुओं में अच्छा दूध और अच्छे बैल देने के दोनों ही गुण पाये जाते हैं। इन गुणों को उनमें बराबर बनाये रखने का प्रयत्न होना चाहिए। इन दोनों गुणोंकी दृष्टि से बाहर के इलाके के पशुओं के संयोग के बिना ही वंशोन्नति करनी चाहिए। समुचित बुद्धियुक्त चुनाव और छंटाव के द्वारा इनकी नसलोन्नति की जाय तो ये भारत में सबसे अच्छी नसल के पशु हो सकते है। इन पशुओं

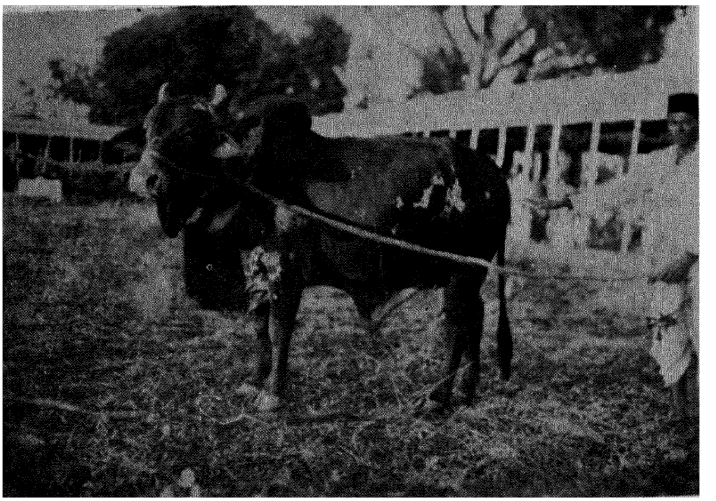
का वजन अधिक होता है। इसलिए चुनाव व छंटाव के समय यह ध्यान रखना चाहिए कि वांछित गुणों के पशु नसल-वृद्धि के कार्य के लिए कम-से-कम वजन के हों, ताकि उनकी संतति कुछ कम वजनवाली हो और अन्य गुण ज्यों-के-त्यों बने रहें। इस प्रकार इनको कम-खर्चीला और अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

२. कृष्णा नदी-घाटी के पशु

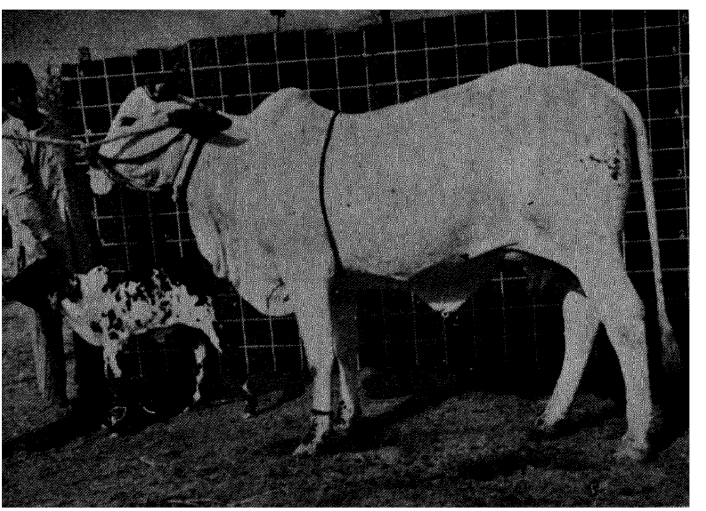
रहने का स्थान—यह कृष्णा नदी की घाटी के निकट तथा हैदराबाद और बम्बई प्रान्त की दक्षिणी नदियों के पास पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—यह इलाका अंगोल जाति के पशुओं और अमृतमहल जाति के पशुओं के बीच में स्थित है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह नसल अंगोल जाति और अमृतमहल की किस्म के पशुओं के संयोग से उत्पन्न हुई है। चराई की सुविधा होने के कारण इस नसल को कायम करने में काफी कामयाबी हुई।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—इनका डीलडौल खासा अच्छा होता है, फिर भी अमृतमहल के पशुओं का बदन जितना खिंचा हुआ होता है, उतना इनका नहीं होता। ये पशु मंझले से कुछ बड़े क़द के होते हैं। इनकी लम्बाई भी काफी होती है। इनमें गाय का वजन ७५०-८०० पौंड, बैल का ८००-८५० पौंड और सांड का ८५०-९०० पौंड तक होता है। ये उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओं के प्रतिरूप होते हैं, परन्तु देखने में इनकी आकृति पर अमृतमहल की किस्म के पशुओं का भी असर मालूम होता है। इनकी खाल और रोआं दोनों पतले होते हैं, परन्तु गर्दन, थुई और माथे पर भूरा या गहरा भूरा रंग पाया जाता है। इनकी कमर लम्बी और सीधी, पेट खूब फैला हुआ, गहरा तथा छाती खासी चौड़ी और गहरी होती है। सिर छोटा और कान उभरे होते हैं। माथा चौड़ा और दोनों आंखों के बीच में कुछ दबा हुआ होता है। इनके सींग छोटे और थोड़ा फैलकर पीछे को होकर साधारण गोलाई



देश्रोनी नसल का सांड



देश्रोनी नसल की गाय

लिये हुए अन्त में नोकीले होते है। चेहरा साधारण होता है। आंखें छोटी, नाक और कान बीच के दर्जे के होते हैं। इनकी गर्दन छोटी और मजबूत होती है। झालर लटकवा होती है। थुई साधारण बडी होती है। कूल्हे बहुत भारी नहीं होते। ऐन विशेष फैले नही होते, परन्तु कम-लटकवा होते है। थन बीच के दर्जे के होते है। पूछ साधारण गुच्छेदार, न बहुत लम्बी और न बहुत छोटी होती है। मूतना लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—इस इलाके में तापक्रम प्रायः ५५° से ११०° फा० और प्रति-वर्ष औसत में ३५ इच वर्षा समझनी चाहिए। ये पशु कृष्णा तथा अन्य नदियों के घाटीवाले इलाकों मे पाये जाते हैं, इसलिए इन्हे काफी हरा चारा मिल जाता है। इनके शरीर की बढोतरी आसपास के पशुओं से अच्छी होती है। इस इलाके की गाये दूसरे इलाके की गायों की अपेक्षा दूध भी अधिक देती हैं। वर्षा साधारण होने के कारण इनका स्वास्थ्य भी अच्छा होता है।

गाय और बैल के गुण—गाय ६-७ सेर तक प्रतिदिन दूध देती है। पहले-पहल करीब ४॥ वर्ष में ब्याती है, बाद मे १-१॥ वर्ष बाद ब्याती है। बैल बहुत मजबूत, बोझ खीचनेवाले, परन्तु बहुत फुर्तीले नही होते हैं। ये अधिकतर खेती के ही काम आते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की आवश्यकता के खयाल से ये काफी अच्छे पशु है। यदि इस जाति के बढिया चुनैता पशु चुनकर बुद्धियुक्त चुनाव और छंटाव के साथ वंशोत्पत्ति का कार्य किया जाय तो इन्हीं से बहुत बढिया जाति के पशु तैयार किये जा सकते है।

३. देश्रोनी

रहने का स्थान—ये पशु प्रायः उत्तरी-पश्चिमी तथा पश्चिमी आंध्र-प्रदेश और बम्बई-प्रदेश के दक्षिण-पूर्व मे पाये जाते हैं। इनके मुख्य निवास-स्थान पुरानी हैदराबाद स्टेट के उस्मानाबाद, नदेड, परभनीं, भिर, औरंगाबाद के जिले तथा गोदावरी और वालाघाटी के दोनों ओर

के तटवर्ती इलाके समझने चाहिए।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ऐसा प्रतीत होता है कि इस इलाके में पशुओं के लिए चारा, दाना और अच्छी घास काफी होती थी। इसलिए अधिक दूध देने की दृष्टि से भी पशु-उन्नति का कार्य हुआ है। इनपर गिर जाति के पशुओं के संयोग का काफी असर है। इनके अलावा डांगी और कांकरेज जाति के पशुओं के साथ भी इनका संयोग हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि एक-सी नसलोत्पत्ति होने के कारण इनपर उन सबका १५०-२०० वर्षों तक बराबर खूब असर पड़ा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु गिर जाति के पशुओं के प्रतिरूप है। इनका डीलडौल भी उन्हींकी तरह है। ये लम्बे, परन्तु वजन में गिर से थोड़ा कम हैं। इनमें गाय का वजन लगभग ७०० पौड, बैल का लगभग ७५० पौड और सांड का ८०० पौड तक होता है। ये काले, गेरुए और सफेद रंग के होते है। वैसे काले और सफेद मिले चितकबरे रंग में भी बहुतायत से मिलते हैं और अधिक पसन्द किये जाते हैं। इनकी खाल चिकनी और ढीली और रोआं बारीक होता है। कमर बीच में थोड़ी झुकी होती है। पेट बाहर को खूब फैला हुआ और गहरा होता है। छाती चौड़ी और गहरी होती है। सिर और माथा गिर के समान थोड़ा उभरा हुआ होता है। इनके सींग पहले आगे की तरफ होकर ऊपर उठते हैं फिर पीछे को फैलकर चन्द्राकार होते हैं। इनका चेहरा पतला होता है। आंखें बड़ी और चमकीली होती हैं लेकिन ऊपर का हिस्सा थोड़ा झुका हुआ होता हैं और आंखों को ढक लेता है। नाक साधारण, कान बड़े और लटकवां होते हैं। थुई बड़ी और भारी होती है। कूल्हे खूब भरे हुए और भारी होते हैं। ऐन गिर जाति की गाय-जैसे भारी और लटकवां नहीं होते। इसी माफिक इनके थन भी उतने बड़े नहीं होते। पूछ खूब लम्बी और गुच्छेदार होती है। मूतना बड़ा और कम-लटकवां होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ५०°

से ११०° फा० और प्रतिवर्ष ३२ इंच तक वर्षा होती है। जिस इलाके में ये पशु पाये जाते हैं, वह इलाका गिर जाति के इलाके से मिलता-जुलता है। यह इलाका उपजाऊ है और चारा-घास पौष्टिक होती है। इस कारण इस नसल के पशुओं को अच्छी खूराक मिल जाती है और इनके शरीर की बढ़ोतरी अच्छी हो सकी है। यहां की गायें काफी दूध देती हैं।

गाय और बैल के गुण—अच्छी गाय ८-९ सेर तक दूध देती है। पहली बार गाय लगभग ५ वर्ष की आयु में ब्याती है, बाद में लगभग डेढ़ वर्ष में ब्याती है। इनका दूध भी काफी अच्छा होता है। बैल मजबूत तथा भारी वजन खींचनेवाले, परन्तु धीमी चालवाले होते हैं।

उन्नति के उपाय—यदि लगातार समुचित चुनाव और छंटाव द्वारा इन पशुओं की वंशोन्नति की जाय और इनमें इसी इलाके के फुर्तीले और अधिक दूध देनेवाले पशुओं का गुण एकत्रित किया जाय, तो बिना किसी दूसरी नस्ल के पशुओं के संयोग से अच्छा दूध देनेवाली गाय और अच्छा काम करनेवाले फुर्तीले बैलों की एक नसल बनाई जा सकती है।

: ६ :

महाराष्ट्र-प्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश में, दक्षिण में मैसूर से लेकर उत्तर में महागुजरात तक, अरबसागर और आंध्र-प्रदेश तथा मध्य-प्रदेश के बीच का इलाका सम्मिलित है। यहां पर विविध प्रकार की भूमि पाई जाती है। यहां प्रायः दुमट और चिकनी, लाल तथा काली मिट्टी मिलती है। कहीं-कहीं रेतीली भूमि भी मिलती है। इस प्रदेश में वांछित खनिज पदार्थों की कुछ कमी है। यहां काफी गर्मी और सर्दी होती है। वर्षा ऋतु में खूब वर्षा होती है। इस प्रदेश में पहाड़ी भाग को छोड़कर शेष भाग में खेती खूब होती है। कोंकण का इलाका धान की खेती के लिए प्रसिद्ध है। यहां चराई विशेष नहीं होती। कोंकण के इलाके के अलावा यहां पशुओं की चराई, खिलाई-पिलाई अच्छी होती है, इसलिए इस इलाके के पशु खूब पुष्ट होते हैं।

इस इलाके में मुख्यतया खिलारी, डांगी और बम्बई के पास कंकोन के धान के इलाके में बहुत छोटे कद के कंकोनी जाति के पशु मिलते हैं। इस प्रदेश के तटवर्ती पशु मध्य-प्रदेश, आंध्र-प्रदेश और मैसूर-प्रदेश के पशुओं से प्रभावित हैं। इस इलाके में किसी प्रसिद्ध जाति या नसल के पशु नहीं हैं। गायें यहां मामूली दूध देती हैं। बैलों में अपेक्षाकृत काम करने की शक्ति अधिक होती हैं। वे चारे के अभाव में थोड़े चारे पर भी निर्वाह कर लेते हैं।

इस इलाके में पशु-उन्नति का कार्य विधिवत्, ढंग से, नहीं हुआ है। कुछ पशु-प्रजनन और उन्नति का कार्य पूना में और वहां के सैनिक डेरी-फार्मों पर हुआ है। परन्तु इसका वहां के स्थानिक पशुओं पर कोई

प्रभाव नही पड़ा। इस इलाके के निवासी काफी पुरुषार्थी, मेहनती तथा दूध-घी आदि के शौकीन होते है। इनका मुख्य धन्धा खेती-बाड़ी है। इस कारण यहां यदि विधिवत् उन्नति का कार्य किया जाय, तो काफी उन्नति हो सकती है; किन्तु कोकण के इलाके मे खूब वर्षा और धान की खेती होती है और यहा के रहनेवाले बहुत गरीब है, इसलिए वे अपने पशुओं को भली प्रकार पालने में असमर्थ है।

यहा बैल तो अच्छे पाये जाते है, परन्तु गाये दूध कम देती है। इस कारण यहा अन्य गुणों के साय-साथ गायों मे अधिक दूध देने की क्षमता बढ़ाना परमावश्यक है।

यहा के मुख्य पशु खिलारी और डागी का नीचे वर्णन किया जाता है।

१. खिलारी

रहने का स्थान—इस जाति के पशु बम्बई प्रान्त के शोलापुर तथा सतारा जिलों में और उसके आस-पास के इलाकों मे पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—खिलारी पशु के बराबर ही कृष्णा नदी-घाटी और अमृतमहल जाति के पशु मिलते है। सम्भव है कि इनके मेल-जोल से ये पशु उत्पन्न हुए हों। इनमे उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओ के गुणों की भी झलक मिलती है। इस इलाके मे चारे-दाने की कमी होने के कारण ऐसा प्रतीत होता है कि यहां वंशोन्नति का कार्य विशेष रूप से नही हो सका।

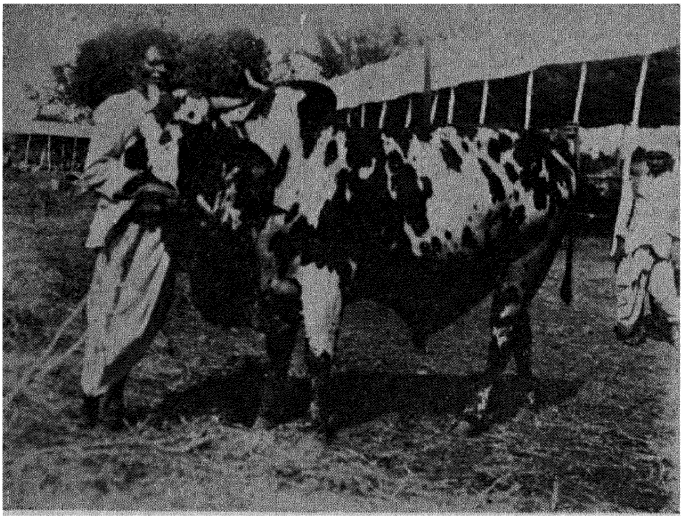
शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु अमृतमहल के प्रतिरूप होते हैं। ये उतने तेज, फुर्तीले और गठीले नहीं होते, परन्तु काम करने में काफी मजबूत और तगड़े होते है। डील-डौल मे अमृतमहल-जैसे होते हैं, परन्तु इनकी लम्बाई उनसे अधिक होती है। इनमे गाय का वजन करीब ७५० पौड और बैल का ८०० पौड तथा सांड का ८५० पौंड के समझना चाहिए। इनके खाल और रोआ मध्यम जाति के होते हैं। गाय और बैल प्रायः सफेद रंग के होते है। साड भी सफेद रंग के होते

हैं परन्तु उनके पीछे के पुट्ठों के पास गर्दन और थुई पर भूरा रंग भी होता है। इनकी कमर खूब लम्बी तथा पेट बाहर को फैला हुआ और काफी गहरा होता है। छाती काफी चौड़ी होती है। सिर अमृतमहल-से मिलता-जुलता, माथा अमृतमहल से कम चौड़ा, सींग अमृतमहल-जैसे ज़रा सफेद रंग लिये होते हैं, परन्तु पीछे को अधिक न जाकर ऊपर को उठे होते हैं। चेहरा ज़रा छोटा होता है। आंखें चमकीली और छोटी होती हैं। नाक साधारण होती है। कान ज़रा छोटे और खड़े होते हैं। गर्दन बीच के नाप की, परन्तु मजबूत होती है। गल-कम्बल बीच के साइज का और लटकवां होता है। थुई साधारण परन्तु कुछ ऊपर को उठी हुई होती है। कूल्हे मजबूत होते हैं। ऐन साधारण और थन मध्यम दर्जे के होते हैं। पूंछ छोटी, काली, गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा होता है।

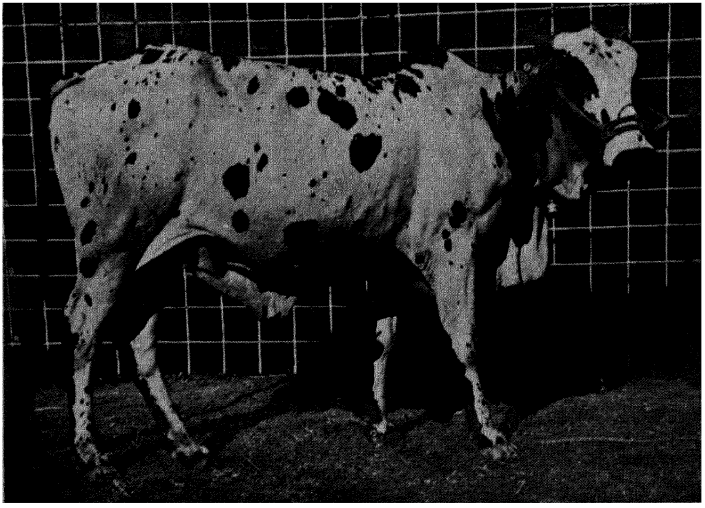
जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—तापक्रम प्रायः ४५° से ११०° फा० हा० और वर्षा ३५ इंच प्रतिवर्ष होती है। इस इलाके में तरी और गर्मी अधिक तथा भूमि कम कड़ी और मुलायम होने के कारण ये पशु हल्के काम करने के आदी होगये हैं और भारी काम करने में कम कुशल हैं। खनिज पदार्थों की कम कमी और खिलाई-पिलाई अच्छी होने के कारण शरीर का ढांचा कुछ अच्छा होता है।

गाय और बैल के गुण—इस जाति की गायें कृष्णा नदी-घाटी की गायों से कम दूध देती हैं। अच्छी गाय भी ५ या ६ सेर से अधिक दूध नहीं देती। गाय पहले ५ वर्ष में ब्याती है और बाद में औसतन डेढ़ वर्ष में ब्याती रहती है। बैलों में दम अधिक होता है। चारे के अभाव में यह थोड़े चारे पर ही निर्वाह कर लेते हैं और काफी देर तक हल चला सकते हैं तथा सड़क पर गाड़ी खींच सकते हैं।

उन्नति के उपाय—यदि अच्छे चारे-दाने का खिलाने का प्रबन्ध हो जाय और उनको भली प्रकार रखा जाय, तो बुद्धियुक्त चुनाव और



डांगी नसल का सांड



डांगी नसल की गाय

छंटाव के द्वारा विधिवत् पशु-प्रजनन के कार्य से इनकी उन्नति की जा सकती है। इनमें दूध बढाने के लिए कृष्णा-घाटी के चुने हुए भारी पशुओं का संयोग कराया जा सकता है।

२. डांगी

रहने का स्थान—इस जाति के पशु महाराष्ट्र में अहमदनगर जिले के आसपास नासिक, धरमपुर, जौहार आदि इलाकों में पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—असल मे देखा जाय तो देओनी और डागी नसल के पशुओं मे बहुत कम अन्तर है। देओनी जाति के पशु कद में बड़े होते है और जरा ढीले बदन के होते है, क्योंकि इनमें गिर जाति के पशुओं का खून अधिक है। डागी जाति के पशु कुछ अधिक फुर्तीले होते हैं। इस जाति के पशु खिलारी, देओनी, ग्वालो, निमारी और गिर जाति के पशुओ के मिश्रण प्रतीत होते है। इनकी वंशोत्पत्ति का कार्य इलाके की आवश्यकतानुसार हुआ है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—इस जाति के पशु छोटे कद के और लम्बे होते हैं। गाय का वजन ६०० पौंड, बैल का ६५० पौंड और सांड का वजन अन्दाजन ७०० पौंड होता है। इनकी खाल बहुत पतली और चिकनी होती है, यहां तक कि तेज वर्षा का असर भी इन पर बहुत कम होता है। इनका रोआं बहुत छोटा होता है। रंग अधिकतर काला, सफेद और कभी-कभी गहरे गेरुए रग से मिलकर चितकबरा होता है। इनकी कमर सीधी तथा पेट कद के अनुसार खूब विकसित होता है। छाती साधारण चौडी होती है। सिर देओनी पशुओं के समान होता है। इनका माथा भी थोडा चौड़ा होता है। चेहरा विशेष लम्बा नही होता। सीग थोड़े मोटे तथा ज़रा बाहर की ओर फैले हुए, देओनी जाति के पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। इनकी आंख बीच के दर्जे की चेतन तथा चमकीली होती है। नाक साधारण विकसित, कान छोटे और बीच के दर्जे के खड़े, गर्दन छोटी परन्तु मजबूत होती है। गलकम्बल बीच के

दर्जे का और कम लटकवां होता है। गायों की थुई साधारण परन्तु नर पशुओं की अच्छी विकसित होती है। कूल्हे मजबूत और चौड़े होते हैं। ऐन और थन छोटे होते हैं। पूछ छोटी गुच्छेदार होती है। मूतना बीच के साइज का परन्तु कम-लटकवां होता है। इन पशुओं के खुर सख्त काले और बिल्लौरी पत्थर-जैसे होते हैं।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ४०° से ११२° फा० तक रहता है। ये पशु पथरीली तथा काली चिकनी मिट्टी की धरती के इलाके में पाये जाते हैं। यहां वर्षा ४० इंच से ऊपर होती है। वायु में तरी रहती है। आवश्यक खनिज पदार्थों की कमी भी है। धान की खेती विशेष रूप से होती है, इसलिए इन पशुओं का डील-डौल कम बढ़ पाया है। इस इलाके के निवासियों का मुख्य धन्धा खेती है इसलिए पशु-पालन में विशेष दिलचस्पी लेते हैं और इनकी खिलाई-पिलाई अच्छी करते हैं। ये काम करने में और बोझ ढोने में मजबूत और खास फुर्तीले होते हैं।

गाय और बैल के गुण—गायें दूध देने में अच्छी नहीं होतीं। ये तीन-चार सेर तक दूध देती हैं। ये पहली बार चार या साढ़े चार वर्ष में ब्याती हैं, फिर करीब डेढ़ वर्ष में ब्याती हैं। बैल फुर्तीले और सख्त काम करनेवाले होते हैं। इस जाति के पशु घनी वर्षा को बर्दाश्त कर सकते हैं। इस इलाके में वर्षा बहुत होती है इसलिए इस इलाके के लिए ये पशु बहुत उपयुक्त हैं। ये गुण आसपास के इलाके के पशुओं में कम हैं।

उन्नति के उपाय—असल में यह कोई नसल नहीं है। इस जाति के पशु आसपास के इलाके के गिर, देओनी, निमारी और ग्वालो पशुओं के मिश्रण हैं। इनमें जिस जाति के पशु का खून अधिक हुआ, उसीका गुण इनमें विशेष रूप से दिखाई देने लगा है। स्थानीय चुनैता पशुओं में जिन गुणों की कमी हो उसी प्रकार के अधिक गुणवाले स्थानिक पशुओं के सांड से ही इनका संयोग कराना अच्छा है और समुचित चुनाव और छंटाव के साथ वंश-वृद्धि का कार्य करना चाहिए। यदि ऐसा करने के

बाद यह अनुभव हो कि किसी खास गुण की विशेष रूप से कमी है तो उस गुणवाले बराबर के इलाके के छोटे कद के सांड का संयोग कराकर उस गुण को बढ़ाया जा सकता है।

: ७ :

मध्यप्रदेश के गाय-बैल

इस इलाके की सीमा के दक्षिण-पश्चिम भाग में आंध्र-प्रदेश, पश्चिम भाग में महाराष्ट्र-प्रदेश, उत्तर-पश्चिम में महागुजरात तथा राजस्थान, उत्तर-पूर्व में उत्तरप्रदेश और पूर्व में बिहार तथा दक्षिण-पूर्व में उड़ीसा-प्रदेश हैं।

यहां की भूमि रेतीली, दुमट, चिकनी और कपास बोने योग्य काली तथा पथरीली होती है। यहां राजस्थान से लगे हुए इलाके को छोड़कर वांछित खनिज पदार्थों की प्रायः कमी है और जलवायु भी निकम्मी है। वर्षा बहुत होती है। वर्षाकाल में तो यहां मैदानों में खूब पानी भर जाता है।

राजस्थान के निकट इस इलाके में पशुओं के लिए चराई काफी मिलती है। उत्तरप्रदेश के निकट के इस इलाके में चराई इससे कम मिलती है। सतपुड़ा और विन्ध्याचल की पर्वत-श्रेणियों के आसपास मैदानी और पहाड़ी तथा नर्मदा और ताप्ती नदियों के निकटस्थ इलाकों में भी चराई मिलती है। इसके अतिरिक्त शेष प्रदेश में चराई बहुत कम मिलती है। जहां चराई कम मिलती है वहां का चारा-घास आदि भी इस प्रदेश में के उत्तरी भाग के चारे-घास की तरह पौष्टिक नहीं होता। पशु चराई के अलावा खेती के घास-भूसे पर ही निर्भर करते है। यहां ऊपर से दाना आदि खिलाने का रिवाज नहीं है और न यहां हरा चारा ही बोया जाता है। इसलिए गायें इतना कम दूध देती हैं कि अक्सर उन्हें दुहा ही नहीं जाता। बैल इतने कमजोर होते हैं कि खेती और यातायात का काम अधिकांश में भैंसों से लिया जाता है। यहां अत्यधिक वर्षा और

वर्षा-काल मे मैदानों में अधिक पानी भरे रहने के कारण गायों-बैलों की अपेक्षा भैंसे अधिक पनपती हैं, परन्तु वे भी अच्छी नही होतीं।

इस इलाके मे ग्वालो, निमारी और मालवी जाति के पशुओ को छोडकर अन्य किसी खास नसल या जाति के पशु नही होते। प्रायः इस इलाके के पशु आसपास के इलाके मे पाये जानेवाले पशुओं के मिश्रण होते है।

इस इलाके की गाए ऐसे स्थानों के अतिरिक्त जहा अच्छी चराई और ऊपर से भरपेट चारा खाने को मिलता है, बहुत कम दूध देती हैं। कही-कही तो वे इतना कम दूध देती हैं कि उन्हें दुहा भी नही जा सकता। इसी प्रकार अच्छे बैल भी नही मिलते है। क्योकि यहां के निवासियों का मुख्य धन्धा खेती-बाड़ी ही है, इसलिए गायों की अपेक्षा बैलों की अच्छी देखभाल होती है और वे अपेक्षाकृत अच्छे होते है।

यहा पशु-प्रजनन का कोई खास कार्य नही हुआ है। डेरी फार्म, कैटिल फार्म, ऐग्रीकल्चर कालेज, फौजी डेरी-फार्म और सरकारी पशु-महकमे ने पशु-उन्नति का जो कुछ कार्य किया है, उसका यहा के पशुओं पर कोई प्रभाव नही पडा है।

यहा के निवासियो का रहन-सहन औसत दर्जे से भी निम्न है। खेती-बाडी, पशु-पालन तथा अन्य रोजगार के साधन कम होने के कारण यहां के निवासियो का स्तर नही उठ सका है। इसलिए उनकी उन्नति की ओर प्रवृत्ति कम होगई। अब वे जैसे-तैसे गुजारा करने में ही विश्वास रखते हैं। यहां के मुख्य धन्धे खेती-बाड़ी को उन्नत व विकसित करने के लिए अच्छे पशुओं की उन्नति करना इस दृष्टि से परमावश्यक होगया है। यहा की स्थिति सुधारने में विशेष कठिनाइयों का मुकाबला करना होगा। इस प्रदेश में गाय-बैलों के मुकाबले में भैंसें अधिक पनपती हैं, इसलिए फिलहाल यदि यहां भैंसों को उन्नत करने का कार्य जोरों से किया जाय तो सम्भव है कि अपेक्षाकृत यहां की स्थिति शीघ्र सुधर सके; परन्तु अन्त में तो गाय-बैलों के सुधार पर ही यहां की समृद्धि बढ़

सकेगी, क्योंकि गाय की नर और मादा दोनों सन्तानों के अधिक और और पूरे उपयोग से ही कम लागत पर अधिक उत्पादन किया जा सकता है।

इस इलाके की कुछ जाति के पशुओं का वर्णन नीचे दिया जाता है—

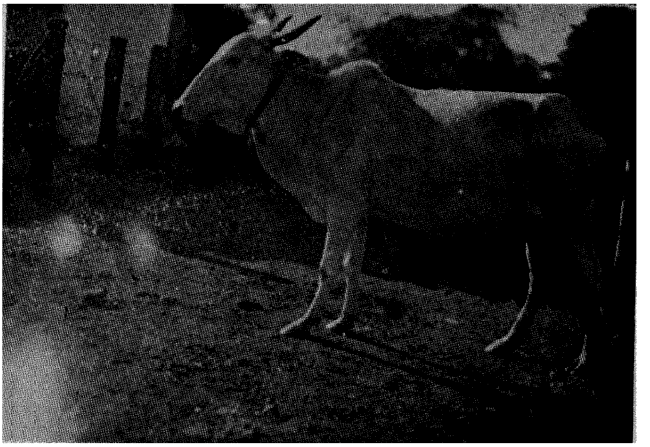
(१) ग्वालो, (२) निमारी, (३) मालवी, (४) विंध्याचली, (५) नर्मदा-घाटी के मध्य भाग के पशु, (६) सतपुड़ा डिवीजन के पशु, (७) मध्यप्रदेश के तराई और धान के इलाके के पशु।

१. ग्वालो

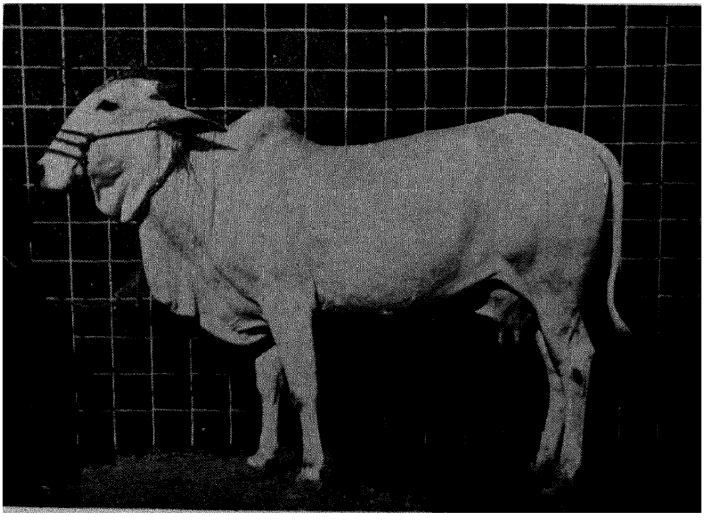
रहने का स्थान—यह मध्यप्रदेश, वर्धा तथा छिंदवाड़ा जिलों में, सतपुड़ा की घाटी तथा नागपुर जिले के कुछ भाग में पाये जाते हैं। वर्धा इनका केन्द्र है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इनका वंशोन्नति का कार्य स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति के लिए आरम्भ में मालवी, उत्तरी भारत के सफेद और भूरे रंग के पशुओं या कांकरेज जाति के पशुओं के संयोग से किया गया है। इसमें कामयाबी भी हुई है और काफी हद तक वांछित गुण जमा हो गये हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—यह उत्तरी भारत के सफेद और भूरे पशुओं के प्रतिरूप होते हैं। बहुत ऊंचे नहीं होते, पर इनका शरीर लम्बा और हल्का होता है। इनमें गाय का वजन लगभग ६५०-७०० पौंड, बैल का ७००-७५० पौंड तथा सांड का ७५०-८५० पौंड तक होता है। इनकी खाल और रोआं बीच के दर्जे के होते हैं। गाय अधिकतर सफेद होती है परन्तु बैल का सिर, गर्दन तथा अगला हिस्सा भूरे रंग का होता है। कमर सीधी और पेट न तो दोनों तरफ फैला हुआ और न गहरा होता है। इनकी छाती भी विशेष चौड़ी नहीं होती। सिर चौड़ा और माथा उभरा हुआ होता है। इनके सींग छोटे और उत्तरी भारत के पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं, परन्तु नोकीले नहीं होते हैं। चेहरा



ग्वालो नसल की गाय



ग्वालो नसल की गाय

खूब लम्बा और पतला होता है। आंख चमकदार, साधारण से कुछ बडी और नाक खासी होती है। कान विशेष लम्बे नही होते, पर जरा-सी आवाज से खड़े हो जाते हैं। गर्दन बीच के आकार की होती है, परन्तु बहुत भारी नही होती। गलकम्बल खूब बड़ा और लटकवां होता है। थुई काफी उभरी हुई होती है। कूल्हे विशेष भारी नहीं होते। ऐन बीच के दर्जे के होते है, परन्तु लटकवा नही होते। थन बीच के आकार के और एक-से होते हैं। पूछ गुच्छेदार होती है, परन्तु विशेष लम्बी नही होती। मूतना छोटा परन्तु कम-लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—इनके इलाके में विशेष वर्षा नही होती, प्रायः ४०-४२ इच तक प्रतिवर्ष होती है। गर्मी ४०° से ११७° फा० तक होने के कारण तरी कम होती है। पशु प्रायः चराई पर अधिक निर्भर करते हैं। खेती विशेषकर ज्वार, कपास, धान इत्यादि की होती है। इससे यहां के पशुओं की खिलाई-पिलाई साधारण हो पाती है। वाछित खनिज पदार्थों की भी कुछ कमी है। इस कारण इनके शरीर का जितना विकास होना चाहिए था, उतना नही हो सका।

गाय और बैल के गुण—गाएं दूध खासा देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें दूध देने के गुण है। ७-८ सेर दूध देनेवाली गाय भी पाई जाती है। ये पहले साढे चार या पाच वर्ष के लगभग ब्याती हैं और बाद में भरपेट खुराक मिलने पर सवा वर्ष में ब्याती हैं। इस जाति के बैल भी मजबूत होते है जो दूर तक तेज भाग सकते हैं।

उन्नति के उपाय—इस जाति के पशुओं की वंशोन्नति का कार्य वर्धा में गो-सेवा-सघ कर रहा था। यहां विधिवत् कार्य न होने पर भी उन्हें काफी सफलता मिली है। बिना किसी बाहर के इलाके के पशुओं के संयोग के नियमित वंश-वृद्धि का काम समुचित चुनाव और छंटाव के द्वारा किया जाय तो इस जाति की गायों मे वांछित दूध देने के तथा बैलों में कार्य करने के गुण पैदा किये जा सकते हैं।

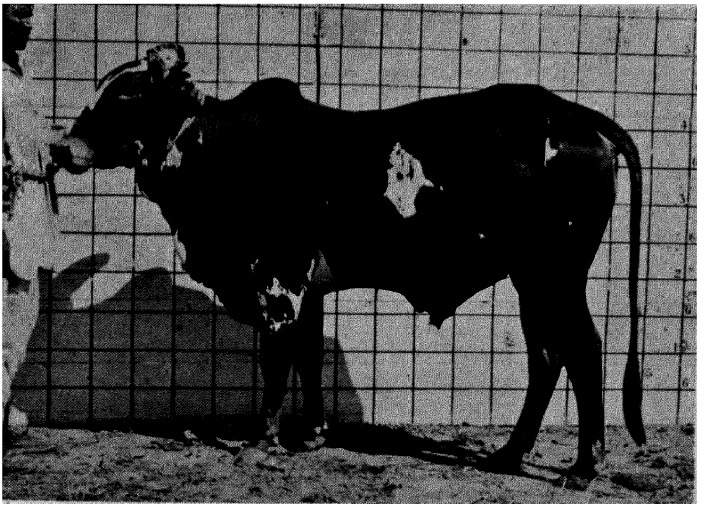
२. निमारी

रहने का स्थान—ये पशु नर्मदा नदी की घाटी में तथा उसके आस-पास मध्यप्रदेश में पाये जाते हैं।

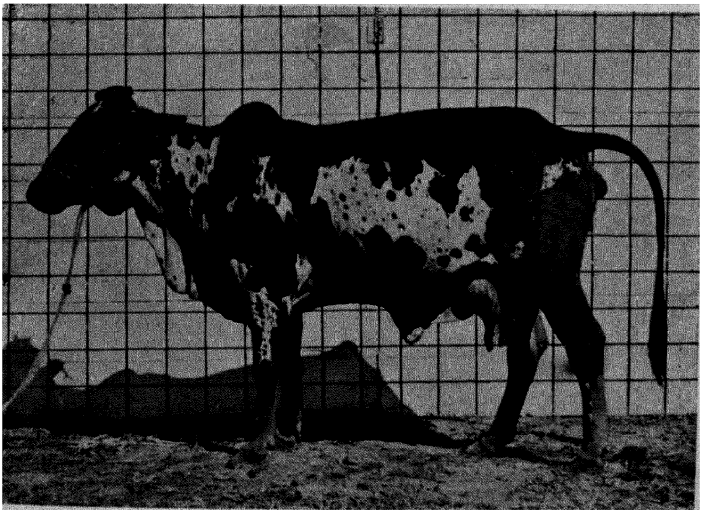
वंशोत्पत्ति का इतिहास—जिस इलाके में यह पशु पाये जाते हैं उस इलाके के आसपास के डांगी और खिलारी पशुओं और गिर नसल के संयोग से इनकी वंश-वृद्धि हुई है। ये मिश्रित जाति के पशु हैं। यहां के पशु ज्यों-ज्यों पूर्व और दक्षिण की ओर गये, त्यों-त्यों अधिक खराब होते गये हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—इनका शरीर लम्बा होता है। इनमें गाय का वजन ६५०-७०० पौंड, बैल का ७५० पौंड तथा सांड का ८०० पौंड तक होता है। इनकी खाल पतली और रोआं साधारण और छोटा होता है। रंग अधिकतर गेरुए रंग की भांति लाल होता है। शरीर पर कहीं-कहीं सफेद और काले धब्बे भी होते हैं। कमर सीधी, पेट साधारण तथा दोनों तरफ बाहर को फैला हुआ परन्तु गहरा नहीं होता। छाती बीच के दर्जे की साधारण होती है। सिर और माथा थोड़ा उभरा हुआ होता है। इनके सींग खिलारी और गिर के बीच के होते हैं। सिर के बाहरी सिरे से निकल कर ऊपर की ओर बाहर की तरफ उठे होते हैं और सिर पर पीछे की तरफ घूम जाते हैं। चेहरा लम्बा होता है। आंख साधारण तथा कुछ मिची हुई सी होती है। नाक साधारण भारी होती है। गलकम्बल बहुत तो नहीं परन्तु ऊपर तक लटकवां और जबड़े के नीचे के भाग तक फैला हुआ होता है। थुई, खास-कर सांडों की, खासी अच्छी और विकसित होती है। कूल्हे विशेष विक-सित नहीं होते। ऐन छोटे, थन नजदीक-नजदीक और गुच्छेदार होते हैं। पूंछ पतली, लम्बी और गुच्छेदार होती है। मूतना बीच के दर्जे से छोटा परन्तु लटकवां होता है।

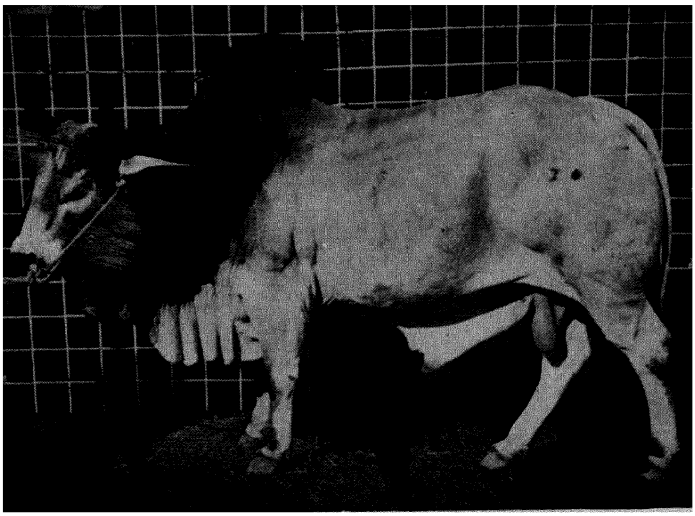
जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ४०° से ११७° फा० तक होता है और वर्षा ४० इंच के करीब होती है। यहां



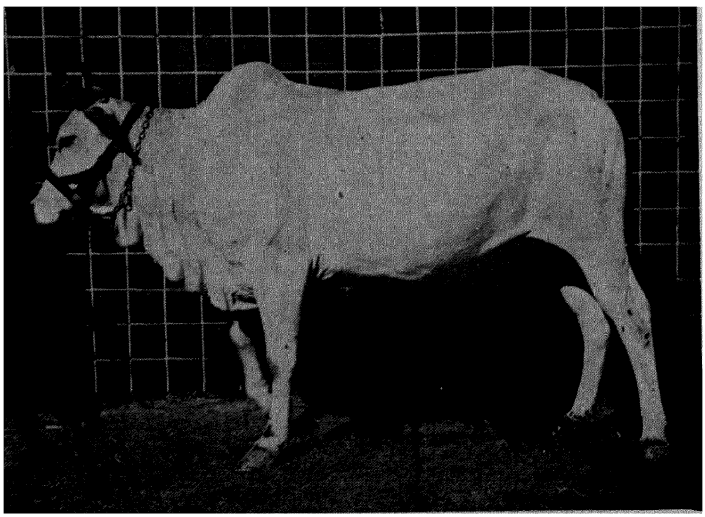
निमारी नसल का सांड



निमारी नसल की गाय



मालवी नसल का सांड



मालवी नसल की गाय

पहाड़ी, पथरीली और नर्मदा की घाटी में रहने के कारण हलके शरीर के अच्छी बढ़ोतरीवाले पशु होते है। घाटी मे अच्छा चारा मिल जाने के कारण गाये अच्छी-खासी मात्रा मे दूध देती है।

गाय और बैल के गुण—गाय ५-६ सेर दूध देती है। बैल छोटे कद के, मजबूत और फुर्तीले होते है। इस जाति के बैल हर प्रकार की धरती मे, यहा तक कि चिकनी और पथरीली धरती में भी, काम कर सकते हैं।

उन्नति के उपाय—इस जाति के पशुओं में हमें इसी नसल के अच्छे गुण जमा करने की जरूरत है। ये बुद्धियुक्त चुनाव और छटाव की प्रजनन-प्रणाली द्वारा प्राप्त किये जा सकते है।

३. मालवी

रहने का स्थान—ये मध्यप्रदेश के मध्यभारत और बरार के इलाके में पाये जाते हैं। इस जाति के अल्प-विकसित पशु पुरानी निजाम स्टेट के उत्तरपूर्वी इलाके में भी मिलते है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—यहां की धरती चिकनी और कड़ी होती है। खेती यहां का मुख्य व्यवसाय है। इसलिए इस इलाके में मजबूत और बीच के कद के बैलों की आवश्यकता को पूरा करने की दृष्टि से वंशोत्पत्ति का कार्य हुआ है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां के रहने-वालों की विशेष आवश्यकता खेती और माल ढोने की ही थी, इसलिए उन्होंने दुग्धोत्पत्ति की ओर ध्यान नही दिया। आरम्भ मे उत्तरी भारत के राजस्थान के इलाके के पशुओ तथा इस इलाके के पशुओं के संयोग से इन पशुओं की वंशोत्पत्ति हुई है। उपर्युक्त दृष्टि से बराबर नसलोत्पत्ति का कार्य होने के कारण इनमे इस जाति के गुण काफी प्रविष्ट होगये हैं, यहां तक कि यह नसल बन गई है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—इन पशुओं के शरीर की बनावट की खूबी यह है कि ये आगे-पीछे से एकसार ठोस बक्स के माफिक

मंझले और लम्बे कद के होते हैं और टांगें शरीर के अनुपात से छोटी, बिल्कुल सीधी तथा मजबूत होती हैं। गाय का वजन ६५०-७०० पौंड तथा सांड का ८०० पौंड तक होता है। इनकी खाल पतली होती है। रोआं छोटा और चमकीला होता है। गाय और बैल सफेद रंग के होते हैं, परन्तु सांड की गर्दन और थुई काले रंग की होती है। इनकी कमर बिलकुल सीधी, पेट बाहर को फैला हुआ, परन्तु सब तरफ से एकसार और चौकोर-सा होता है। छाती खासी फैली हुई होती है। इनका सिर छोटा और चौड़ा होता है। माथा चौड़ा और बीच में दबा हुआ गड्ढे जैसा होता है। इनके सींग मजबूत, मोटे, छोटे, गोलाकार, ऊपर को उठकर आगे को मुड़े हुए होते हैं। चेहरा कम लम्बा और चौड़ा होता है। आंखें बीच के दर्जे की होती हैं। नाक अच्छी विकसित, कान मोटे, छोटे तथा नोकीले होते हैं। गर्दन छोटी, चौड़ी तथा मजबूत होती है। झालर खूब बड़ी और लटकवां तथा छाती से जबड़े तक फैली होती है। थुई अच्छी विकसित होती है। कूल्हे मजबूत और भरे होते हैं। ऐन और थन दोनों छोटे होते हैं। पूछ छोटी और भरी गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा और खिंचा हुआ होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ४५° से ११०° फा० और वर्षा करीब २७ इंच प्रतिवर्ष होती है। ये पशु प्रायः भारत के निचले इलाके के उस भाग में पाये जाते हैं जहां सिंचाई की सुविधा नहीं है परन्तु वर्षा खासी होती है। इस इलाके में चरने की अच्छी सुविधा है और धरती प्रायः चिकनी होती है। बरसात के बाद सूखने पर तड़क जाती है। उसमें ज्यादातर कपास बोई जाती है। इस इलाके में खनिज पदार्थों की विशेष कमी नहीं है, इसलिए यहां के पशुओं का विकास अच्छा हुआ है और वे स्वस्थ तथा खूब काम करनेवाले होते हैं, परन्तु दूध कम देते हैं।

गाय और बैल के गुण—गायें दूध कम देती हैं, यहां तक कि अक्सर उन्हें दुहा भी नहीं जाता। बहुत अच्छी गाय २-३ सेर तक दूध देती

है। प्रथम बार ५ वर्ष की अवस्था में ब्याती है, फिर डेढ़ या पौने दो वर्ष में ब्याती है। बैल बड़े मजबूत और खूब चलनेवाले और एक सांस से देर तक काम करनेवाले होते हैं, परन्तु फुर्तीले कम होते है।

उन्नति के उपाय—बैल तो इस जाति के अच्छे हैं ही, यदि इस इलाके के रहनेवाले चाहें तो बराबर के इलाके के अधिक दूध देने का गुण रखनेवाले तथा अच्छे डील-डौल के सांडों का इस इलाके के पशुओं से सयोग करा सकते है, ताकि दूध बढ जाय और उसके साथ-साथ बैलों के गुण कम न हों। यदि इस रीत से नसलोत्पत्ति का कार्य समुचित चुनाव व छटाव के साथ किया जाय तो इस जाति के पशुओं में दूध देने की शक्ति बढाई जा सकती है, परन्तु यह खयाल रखना होगा कि बराबर के इलाके के जिस जाति के पशुओं का अधिक दूध देने का गुण लिया जाय उसका निश्चय पशु-विशेषज्ञ की राय से हो। इन पशुओं का सयोग यदि मेवाती, हरियाना या ग्वालो पशुओं से कराया जाय, तो सम्भवतः वांछित फल प्राप्त हो सके।

४. सतपुड़ा डिवीजन के पशु

रहने का स्थान—ये पशु मांडला, सेमना, छिंदवाड़ा, बेतूल, बालाघाट और इनके आसपास के इलाके में पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—यहां कोई खास नसल या जाति के पशु नही मिलते। आसपास के इलाके के पशुओं के मिश्रित पशु ही यहां पाये जाते हैं। इनकी उन्नति की तरफ भी ध्यान नहीं दिया गया है। यहा के पशु बहुत ही घटिया और अवर्णनीय श्रेणी के है। इस इलाके के लोग यहां के पशुओं को काहन, खामला आदि नामों से पुकारते हैं।

शारीरिक, बनावट, वजन, रंग आदि—ये छोटे और मंझले कद के तथा साधारण डील-डौल वाले पशु होते हैं। वजन में ये पशु लगभग ४००-५०० पौंड तक होते हैं। इनकी खाल और रोआं मोटा तथा भद्दा होता है। इनका रंग सफेद-गहरा कत्थई-लाल जैसा, लाल-गहरा कत्थई, और लाल-सफेद रंग का चितकबरा होता है। इनकी कमर, पेट, छाती,

सेर, माथा, चेहरा, आंख, नाक और कान आसपास के इलाके के पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। इनकी गर्दन छोटी और देखने में मज़बूत होती है। गलकम्बल मंझले आकार का और लटकवां होता है। थुई काफी विकसित और डील-डौल की अपेक्षा थोड़ी बड़ी होती है। कूल्हे साधारण होते हैं। ऐन और थन कम विकसित और छोटे होते हैं। पूंछ मंझले साइज की और मोटी होती है। मूतना आसपास के इलाके के पशुओं जैसा ही होता है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—इस इलाके में सर्दी ३५° फा० और गर्मी ११४ फा० तक होती है। यहां वर्षा-ऋतु में ४०-६० इंच तक अनिश्चित रूप से वर्षा होती है। खेतों की भूमि भी कमजोर है। यहां ज्वार, तिलहन, गेहूं, धान इत्यादि की खेती होती है। पशु प्रायः चराई पर रहते हैं। इस इलाके में लगभग २-३ एकड़ प्रतिपशु के हिसाब से चराई की भूमि मिलती है, परन्तु यहां खनिज पदार्थों की कमी होने के कारण पशुओं का अस्थिपंजर और डील-डौल पूर्णरूप से विकसित नहीं हो पाता और गायें भी कम दूध देती हैं।

गाय और बैल के गुण—गाय इतना कम दूध देती है कि उन्हें दुहा ही नहीं जाता। यदि गाय का बछड़ा होता है तो सारा दूध उसीको पिला देते हैं। अच्छी गाय २-३ सेर दूध दे देती है। गाय पहली बार ४-५ वर्ष में ब्याती है। बाद में १॥-२ वर्ष में ब्याती है। बैल छोटे कद के और मज़बूत होते हैं और इस इलाके में खेती और गाड़ी खींचने के काम में कुशल होते हैं। वास्तव में यहां गो-पालन बैलों को उत्पन्न करने के लिए ही किया जाता है। बैलों की कमी के कारण अब यहां बैलों का स्थान धीरे-धीरे भैंसे ले रहे हैं।

उन्नति के उपाय—इन पशुओं की उन्नति के लिए इनकी खिलाई-पिलाई खूब अच्छी तरह करनी चाहिए और खनिज पदार्थों की कमी को दूर करने का प्रयत्न होना चाहिए। डांगी, निमारी, खामगांव तथा अन्य किसी अधिक वर्षा के इलाके के छोटे कद की और अधिक दूध देनेवाली

जाति की गायें लाकर उनसे इस इलाके के सांडों का संयोग कराकर देखना चाहिए कि इनकी कितनी उन्नति होती है। यदि सन्तोषजनक प्रगति हो तो उनकी सन्तति का परस्पर-संयोग कराकर समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से यहां के पशुओं की उन्नति का कार्य करना ठीक होगा।

५. नर्मदा-घाटी के मध्य भाग के पशु

रहने का स्थान—सतपुडा और विन्ध्य के मध्य में नर्मदा-घाटी के इलाके मे जबलपुर, नरसिंहपुर और होशंगाबाद के इलाके में ये पशु पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इस इलाके मे प्रायः मालवी, साका, सरमांगनी, सेमनी या रीवां के इलाके के पशु आयात किये जाते हैं। इनके अलावा यहां इन पशुओं के मिश्रण मिलते है। यहां कभी पशु-प्रजनन का कार्य विशेष रूप से किया गया हो, ऐसा मालूम नही देता। यह इलाका पशुओं के प्रजनन-कार्य के अनुकूल नहीं है। यहां गायों की अपेक्षा बैल बहुत अधिक संख्या में होते हैं। यह इलाका प्रायः पशुओं के आयात पर ही निर्भर करता है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—इस इलाके में पशु आयात किये जाते है। उनका डीलडौल, कद आदि उनकी जाति के अनुसार होता है। मिश्रित पशु मंझले और छोटे कद के तथा ठोस डील-डौल वाले होते हैं। ये देखने में भद्दे और सुस्त मालूम देते हैं। गाय, बैल तथा सांड का वजन लगभग ६०० पौड तक होता है। इनकी खाल और रोआं मोटा होता है। इनका रंग आम तौर से सफेद होता है। कही-कही ये चित-कबरे रंग के भी मिलते हैं। कमर करीब-करीब सीधी होती है; पेट साधारण विकसित होता है। छाती साधारण, सिर चौड़ा और माथा चपटा होता है। सींग मोटे और लम्बे तथा उपर्युक्त जाति के पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। चेहरा भी उपर्युक्त पशुओं से प्रभावित और बीच

के दर्जे का होता है। आंख और नाक साधारण होती हैं। कान छोटे और लटकवां होते हैं। गर्दन छोटी, मोटी और भारी होती है। गल-कम्बल छोटा और लटकवां होता है। थुई अच्छी और खासी विकसित होती है। कूल्हे चौड़े, मोटे और भद्दे होते हैं। ऐन और थन कम विकसित होते हैं। पूंछ छोटी और भद्दी तथा बीच के नाप की एवं गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा और खिंचा हुआ होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—इस इलाके में रेतीली और हल्की दुमट और पथरीली धरती के अलावा, कपास के इलाके की काली मिट्टीवाली भूमि भी होती है। यहां का तापक्रम ३५° से ११४° फा० तक होता है और वर्षा ५० इंच से अधिक होती है। यहां अधिकतर धान की खेती होती है। यहां गोचर कम और निकम्मी जाति के मिलते हैं। यहां गर्मियों में अधिक गर्मी पड़ती है। परन्तु गेहूं और द्विदल जाति की फसलें भी होती हैं। यहां वांछित खनिज पदार्थों की भी कमी है। इस इलाके में पशुओं को भरपूर चारा नहीं मिलता। इसलिए इनके अस्थि-पंजर तथा शरीर का विकास नहीं हो पाता है और गायें कम दूध देती हैं।

गाय और बैल के गुण—गाय बहुत कम दूध देनेवाली होती हैं। ये सेर-दो सेर दूध भी मुश्किल से देती हैं। ये पहले ४-५ वर्ष में ब्याती हैं, बाद में लगभग १॥ वर्ष में ब्याती हैं। बैल अपने डील-डौल के अनुपात में मज़बूत और साधारण काम करनेवाले होते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की स्थिति पशुपालन के लिए विशेष अनुकूल नहीं है। इसलिए यह आवश्यक प्रतीत होता है कि इनका प्रबन्ध और खिलाई-पिलाई अच्छी होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त यहां पशु-विशेषज्ञों की राय से समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से डांगी या निमारी जाति की अच्छी दूध देनेवाली गायों का आयात करके यहां के पशुओं से संयोग कराकर इस इलाके के पशुओं की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है।

६. विन्ध्याचली पशु

रहने का स्थान—ये पशु विन्ध्याचल पर्वत के उत्तर-पश्चिम में डमोइ और सागर के इलाके में मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—यहां कोई खास नसल के पशु नही होते। यहां मालवी और साका जाति के छोटे कद के घटिया पशु और केनवारिया तथा इन सबके मिश्रित पशु मिलते हैं। ये प्राय: स्थायी एक-से गुणवाली सन्तान पैदा नहीं करते।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये छोटे कद और डील-डौल के पशु होते हैं। गाय, बैल तथा सांड का वजन लगभग ५००-६०० पौंड तक होता है। इनकी खाल और रोआं मंझले दर्जे का होता है। ये सफेद और चितकबरे रंग के होते है। इनकी कमर, पेट, छाती, सिर, माथा, सीग, चेहरा, आंख, नाक, कान, गर्दन, गलकम्बल, थुई, कूल्हे, ऐन, थन, पूछ और मूतना उपर्युक्त केनवारिया, मालवी और साका जाति के पशुओं के निकट के इलाके के पशुओं मे उनसे मिलता-जुलता और शेष पशुओं में उन सबसे प्रभावित होता है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहां तापक्रम ३५° से ११७° फा० तक और वर्षा प्रतिवर्ष करीब ३६ इच होती है। इस इलाके में खेती साधारण होती है, परन्तु चराई खूब उपलब्ध है। यहां आबादी भी कम है, इसलिए पशुओ को खूब भरपेट चारा मिल जाता है। यहां वर्षा खूब होती है। यहा की भूमि रेतीली, दुमट, चिकनी और पथरीली मिट्टीवाली होती है और पानी के अच्छे निकासवाली है, परन्तु वांछित खनिज पदार्थों की कमी होने के कारण यहां के पशुओं के अस्थिपजर छोटे होते है और चारा-घास कम पौष्टिक होने के कारण गाये दूध कम देती है।

गाय और बैल के गुण—गाय १-२ सेर दूध देती है। बहुत कम दूध देने के कारण कहीं-कहीं तो इन्हें दुहा भी नही जाता। अच्छी गायें, जिनकी खिलाई-पिलाई अच्छी होती है, प्रतिदिन ३-४ सेर तक भी दूध दे

देती हैं। ये पहले ४-५ वर्ष में ब्याती हैं, बाद में १।।-२ वर्ष में ब्याती हैं। बैल काम करने में अपने डील-डौल और कद के अनुसार अच्छे होते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की स्थिति गो-पालन के अनुकूल है। इसलिए समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली के द्वारा प्रजनन का कार्य करना चाहिए। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञों की राय से निमारी, डांगी और साहाबादी (गंगातीरी) के चुनैता और छोटे कद के, परन्तु अधिक दूध देनेवाले पशुओं का संयोग कराया जा सकता है।

७. मध्यप्रदेश के तराई और धान के इलाकों के पशु

रहने का स्थान—छत्तीसगढ़ के मैदानी भाग और आसपास के इलाके में तथा मान्दरा, चांदा, बालाघाट, रायपुर, बिलासपुर, बिहार और उड़ीसा के तटवर्ती इलाकों तक तथा दक्षिण-पूर्व की ओर महानदी के आसपास तक ये पशु पाये जाते हैं और भिन्न-भिन्न स्थानों पर अलग-अलग नामों से पुकारे जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये आसपास के इलाके के मिश्रित और बिगड़े हुए पशु हैं। ये गधों से कुछ ही बड़े आकार के होते हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु बहुत छोटे डील-डौल और कद के होते हैं। गाय, बैल और सांड का वजन स्थानीय परिस्थिति के अनुसार कमोबेश ३०० से ५०० पौंड तक होता है। इनकी खाल और रोआं मोटा और भद्दा होता है। ये सफेद, गहरे कत्थई और चितकबरे रंग के होते हैं। कमर थोड़ी झुकी हुई होती है। पेट, छाती, सिर, माथा और चेहरा, आंख, नाक, कान, गर्दन, गलकम्बल, थुई, कूल्हे, ऐन, थन, पूंछ और मूतना इत्यादि आसपास के इलाके के बिगड़े हुए पशुओं के समान होते हैं।

जलवायु तथा खानपान का असर—इस इलाके में सर्दी ३७° फा० तक होती है परन्तु गर्मी की ऋतु में गर्मी ११७° फा० तक पड़ती है। वर्षा ऋतु में इतनी अधिक वर्षा होती है कि चारों तरफ पानी-ही-पानी

दिखाई देता है। यहां औसतन ५०-६० इंच वर्षा तो प्रति-वर्ष हो ही जाती है। यहा की भूमि रेतीली, कहीं-कही धान के इलाके की तरह दुमट और चिकनी भी होती है। पानी की भी बड़ी अजीब स्थिति है। यहां कुए तो नाम-मात्र को ही हैं। पशुओं का गुजारा तो उथले या कम गहरे जोहड़ों (तलैया) और तालाबों से ही होता है। गर्मी में इनका पानी गर्म होकर सड़ने लगता है। यहां मोटे अनाज, गेहूं और अधिकतर धान की खेती होती है। यहां घटिया जाति के गोचर होते हैं और चराई की भूमि में काफी कमजोर घास होती है। चारे की काफी कमी है। वाछित खनिज पदार्थों की यहां विशेष कमी है, इसलिए इस इलाके के पशुओं का अस्थिपंजर और डीलडौल बहुत छोटा होता है और उनका विकास नही हो पाया है। यहां तक कि अक्सर यहां गधे या उससे कुछ ही बड़े आकार के पशु मिलते है। ये अत्यन्त कम दूध देनेवाले और निकम्मे होते है। इस इलाके मे बैल भी खराब होते है। ये पशु इतने निम्न कोटि के है कि खेती और गाड़ी खीचने का कार्य भी अधिकतर भैसों पर निर्भर करता है। यह कहा जा सकता है कि इस इलाके में गाय-बैल पनपते ही नही हैं।

गाय और बैल के गुण—यहां के गाय-बैल दोनों ही अत्यन्त निकम्मी जाति के होते है। यहां गायों को दुहने का रिवाज बहुत कम है। दूध के लिए यद्यपि भैसे भी लगभग उतनी ही निकम्मी होती है, फिर भी लोग उनसे अपनी गुजर-बसर कर लेते है। बैलों का कार्य भी अधिकतर भैसे ही करते है।

उन्नति के उपाय—यहां के गाय-बैलों की उन्नति का प्रश्न बहुत जटिल है। ऐसा प्रतीत होता है कि यदि डांगी और साहाबादी तथा छोटे कद के अधिक वर्षावाले इलाके के निकटवर्ती अधिक दूध देनेवाले, जिनके बैल भी यथासम्भव अच्छे हों, पशुओं को लाकर यहां के पशुओं से संयोग कराया जाय और उनके पालन-पोषण तथा वांछित खनिज पदार्थों की कमी को पूरा करते हुए खिलाई-पिलाई का अच्छा प्रबन्ध

किया जाय, जिससे उनका पेट भी भरे और आवश्यक खनिज पदार्थों की कमी भी दूर हो तथा स्वच्छ जल भी मिले, तो उनकी उन्नति हो सकती है।

: ८ :

महागुजरात के गाय-बैल

इस इलाके के दक्षिण में महाराष्ट्र, पश्चिम में अरब सागर, उत्तर में पाकिस्तान से लगा हुआ कच्छ का इलाका और कुछ भाग में राजस्थान, उत्तर और पूर्व में राजस्थान तथा मध्यप्रदेश की सीमा है। इस इलाके में कपास बोने के योग्य काली चिकनी, दुमट और रेतीली भूमि पाई जाती है। यहां राजस्थान से लगे हुए और कुछ सौराष्ट्र के इलाके के अतिरिक्त कहीं-कहीं वांछित खनिज पदार्थों की कमी भी है। यहां की जलवायु, खासकर सौराष्ट्र और उत्तरी पूर्वी भाग की जलवायु, पशु-पालन के लिए बड़ी अनुकूल है। इस इलाके में छोटी-छोटी अनेक नदियां बहती हैं। इनके मैदान और घाटियों में चराई खूब मिलती है और फसलें अच्छी होती हैं।

यहां के मुख्य पशु कांकरेज और गिर जाति के होते हैं। गिर पशु भारत की मूल नसल के पशुओं में से हैं। इनके अलावा महाराष्ट्र-प्रदेश से लगे हुए इलाके में प्रायः डांगी और महागुजरात तथा महाराष्ट्र के मिश्रित जाति के कम उपयोगी पशु मिलते हैं।

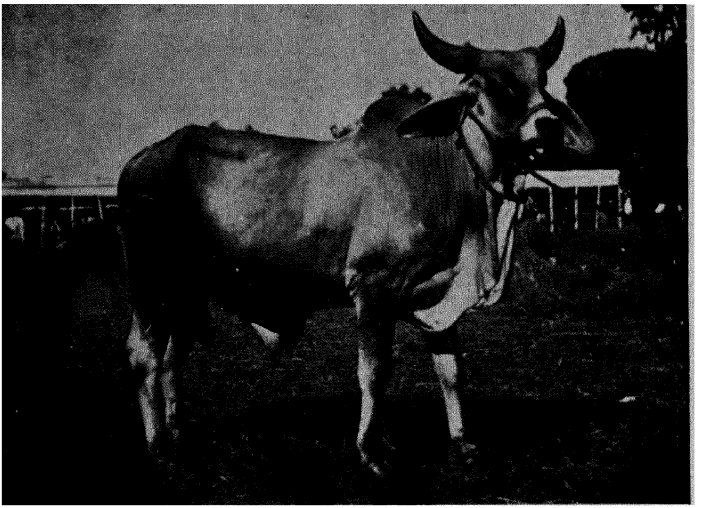
यहां के गिर नसल के पशुओं में ऐसे गुण हैं जो बराबर इनकी संतति में ही नहीं पाये जाते, बल्कि इस नसल के पशुओं का जहां-कहीं भी अन्य जाति के पशुओं से संयोग हुआ है उनमें भी प्रत्यक्ष रूप से दिखाई देते हैं। इसी प्रकार कांकरेज जाति के पशु भी बड़े गुणवान और भारत के प्रसिद्ध पशुओं में गिने जाते हैं। इस जाति की गाय अधिक दूध देने-वाली और बैल खूब फुर्तीले, मजबूत और अधिक देर तक काम करनेवाले होते हैं।

इस इलाके के लोग वंशोत्पत्ति और पशुओं की उन्नति के हुनर को खूब समझते हैं। अतः उन्होंने यहां के पशुओं में दुहरे उद्देश्य से प्रजनन का कार्य किया और उन्हें कांकरेज नसल को कायम करने में सफलता भी मिली।

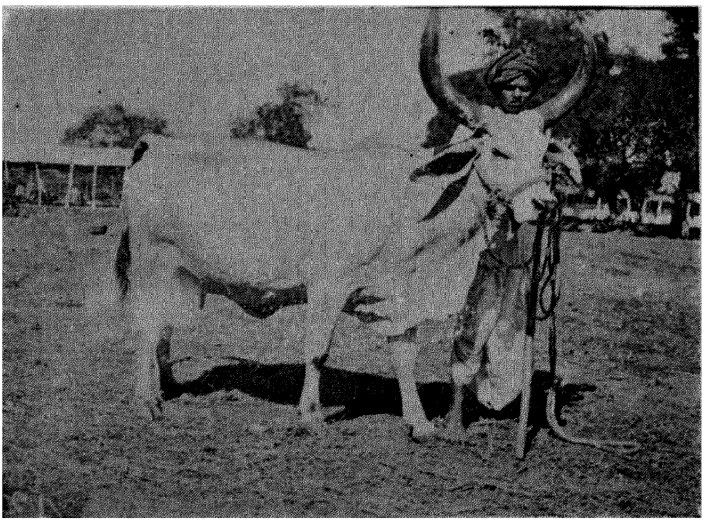
इस इलाके के जंगलों में ऐसे लोग रहते हैं जिनका पशुपालन ही मुख्य पेशा है। ये लोग रबाड़ी कहलाते हैं तथा अपने पशुओं को चराने के लिए घास की तलाश में एक स्थान से दूसरे स्थान पर फिरते रहते हैं। पशु-पालन की कला में ये लोग बड़े निपुण होते हैं। इस इलाके के निवासी दूध, दही, छाछ आदि के शौकीन होते हैं और उनका निर्वाह प्रायः खेती-बाड़ी और पशु-पालन पर ही निर्भर करता है। इसलिए ये लोग अपने पशुओं की खिलाई-पिलाई तथा देखभाल खूब अच्छी तरह करते हैं।

इस इलाके में दिन-प्रतिदिन गोचर-भूमि कम होती जा रही है। पशु केवल चराई पर रहकर भली प्रकार नहीं पनपते, खास करके यह समस्या रबाड़ी लोगों के सामने उपस्थित है। इस स्थिति को हल करने का एक ही उपाय दिखाई पड़ता है। वह यह कि आजकल की खेती की पैदावार को कम किये बिना पशुओं के लिए पर्याप्त मात्रा में उत्तम चारा उत्पन्न किया जाय। यह सिंचाई की सुविधा प्राप्त करने से बखूबी हो सकता है।

यहां पशु-पालन की स्थिति बहुत अच्छी है। केवल महाराष्ट्र के निकटवर्ती इलाके में कुछ ऐसी स्थिति है जिनके कारण वहां अपेक्षाकृत अच्छे पशु नहीं मिलते। इन स्थितियों को दूर करके पशु-प्रजनन का कार्य विधिवत् करने से वहां के पशु भी उन्नत किये जा सकते हैं। सौराष्ट्र की 'जाफराबाद' जाति की भैंसें भी भारत में प्रमुख नसल की भैंसों में से हैं। ये खूब दूध देती हैं। ये बहुत बड़े और भारी डीलडौल की होती हैं। गायों के मुकाबले में ये ड्योढ़ा-दुगुना खाती हैं। इनकी नर-संतान का भरपूर उपयोग इस इलाके में असम्भव है क्योंकि यहां पायें जानेवाले बैल खेती और अन्य कार्यों के लिए इन भैंसों से कहीं अच्छे



कांकरेज नसल का सांड



कांकरेज नसल की गाय

होते हैं। परन्तु फिर भी इस इलाके में भैंसों का एक महत्त्वपूर्ण स्थान बन गया है। इसका विशेष कारण यह है कि इनका दूध विशेष मक्खन-वाला होता है और उसमें मिलावट की भी अधिक गुजायश होती है। आनन्द जिले के आसपास के इलाके से तो हजारों मन दूध, मक्खन, क्रीम आदि रेलगाड़ियों द्वारा बम्बई जाता है जहां इनकी बड़ी भारी खपत है और उनकी अच्छी कीमत मिल जाती है। यदि गो-पालकों की और जनता की दृष्टि इसके यथोचित और ठीक पहलू की ओर खींची जाय तथा अधिकाधिक गाय के दूध के उत्पादन (बिना बैलों के गुण कम किये) और उसकी खपत का प्रबन्ध हो सके तो देश को बहुत लाभ हो सकता है और बर्बादी से बचा जा सकता है।

१. कांकरेज

रहने का स्थान—ये कच्छ की खाड़ी के दक्षिण-पूर्व में और मुख्यत: सरस्वती नदी की घाटी तथा अहमदाबाद जिले और पुरानी रघनपुर स्टेट के आसपास पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इस इलाके के जंगलों में रबाड़ी लोग रहते हैं। पशु-पालन ही इनका पेशा है। ये पशुओं को प्राय: जंगलों में रखते है। पशु-प्रजनन के कार्य को और उनकी उन्नति के हुनर को ये खूब समझते है। इन्होंने इन पशुओं की दुहरे उद्देश्य से ही उन्नति की है। इसमें इन्हे सफलता भी मिली है। अब ये पशु निश्चित नसल के पशु कहे जा सकते है। यद्यपि ये पशु उत्तरी भारत के पशुओं के प्रतिरूप दिखाई देते है, परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें गिर पशुओं के खून का भी कभी मिश्रण हुआ है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु उत्तरी भारत के प्रतिरूप होते हैं। डील-डौल में बड़े मजबूत होते हैं। इनका कद ऊंचा होता है और अधिक लम्बे होते हैं। गाय का वजन ८००-९०० पौंड, बैल का ९५०-१००० पौंड और सांड का ११००-१२०० पौंड तक होता

है। इनकी खाल बीच के दर्जे की पतली होती है। शरीर पर रोआं भी काफी होता है, परन्तु विशेष बड़ा नहीं होता। रंग सफेद और भूरा होता है। खासकर नर-पशुओं के माथे, गर्दन, थुई तथा शरीर का अगला हिस्सा भूरे रंग का और कभी-कभी गहरे भूरे रंग का, हल्का काले रंग जैसा या लोहिया रंग का होता है। खुरों के ऊपर का हिस्सा भी अक्सर भूरे या लोहिया रंग का होता है। कमर सीधी और पीछे की तरफ चौड़ी होती है। पेट दोनों तरफ अच्छा फैला हुआ होता है। छाती चौड़ी और भरवां होती है। सिर चौड़ा होता है। इस जाति के पशुओं की यह विशेषता है कि ये प्रायः सिर को ऊंचा उठाये रखते हैं और बड़े चौकन्ने होते हैं। माथा चौड़ा तथा बीच में कुछ दबा हुआ और गहरा होता है। इनके सींग भारत के सब पशुओं के मुकाबले में भारी होते हैं। ये नीचे से बहुत मोटे तथा दोनों तरफ बाहरको निकलते हुए ऊपर को गोलाकार रूप में उठकर एक-दूसरे की तरफ मुड़े हुए होते हैं और आखिर में नोकीले हो जाते हैं। ये देखने में अर्द्ध-गोलाकार होते हैं। चेहरा लम्बा होता है। आंख बड़ी चेतन और चमकदार होती है। नाक खूब विकसित होती है। कान लम्बे, चौड़े और कम-लटकवां होते हैं। गर्दन विशेष लम्बी नहीं होती, परन्तु मजबूत और मोटी होती है। खासकर सांड की गर्दन बहुत मोटी होती है। गलकम्बल साधारण माप का लटकवां होता है और विशेष फैला नहीं होता। थुई अच्छी विकसित होती है। खासकर सांडों की थुई बहुत भारी और ऊपर को उठी हुई होती है। कूल्हे चौड़े और मजबूत होते हैं। ऐन बड़े और चारों तरफ फैले हुए होते हैं। थन प्रायः बड़े और एकसार होते हैं। इनकी पूंछ सीधी, लम्बी और काले रंग की गुच्छेदार होती है। मूतना बीच के दर्जे का लटकवां होता है। इस जाति के पशुओं की यह विशेषता है कि ये बड़े चौकन्ने और चंचल होते हैं। ये प्रायः अपना सिर ऊंचा रखते हैं। पशुओं के रेवड़ में इस जाति का पशु मिला दिया जाय तो ऐसा मालूम होता है जैसे वह सबका सरदार है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ४०° से ११६° फा० रहता है और वर्षा प्रतिवर्ष करीब ३२ इंच होती है। ये पशु सूखे और रेतीली चिकनी मिट्टी के अधिक सर्दी और गर्मी-वाले इलाके में पाये जाते हैं। वहां वाछित खनिज पदार्थों की कमी नहीं है। जब कभी चरागाह में पर्याप्त चारा नही मिलता, तब इन्हे बोया हुआ चारा या चारे की फसलों से प्राप्त चारा और दाना (रातब) भी खिलाया जाता है। इसलिए ये बहुत मजबूत होते हैं और दूध भी खूब देते हैं। इनके शरीर की बढ़ोतरी खासी अच्छी हुई है। जिस इलाके में इन पशुओं की नसलोत्पत्ति का कार्य हुआ है वहां काफी चरागाहें थीं, जिनमें इनके रेवड़-के-रेवड खुले रक्खे जाते थे। इस जाति के पशु सहज ही मनुष्य के काबू में नही आते। ये बड़े भयानक और चपल होते हैं।

गाय और बैल के गुण—गायें दूध काफी देती हैं। यहां की गायें दूध देने मे भैंस का मुकाबला कर सकती है। अच्छी गाय १० सेर तक और इससे अधिक भी दूध दे देती है, परन्तु इनके दूध में मक्खन का अश भैंस के दूध से कम होता है। इन पशुओं का दूध से हटे रहने का समय अधिक होता है। पहले-पहल गाय ४-५ साल तक की आयु में ब्याती है, फिर साल-सवा साल मे ब्याती रहती है। बैल बोझा खीचने-वाला, तेज चलनेवाला तथा बहुत मजबूत होता है। भारत के प्रमुख बैलों में इनकी गिनती होती है।

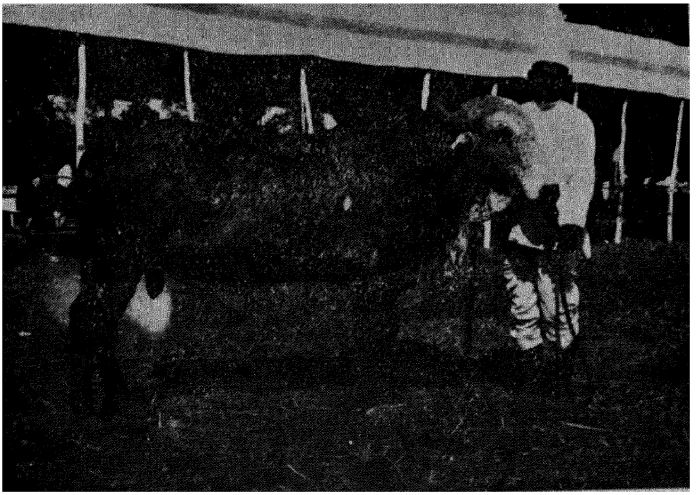
उन्नति के उपाय—इस इलाके में गोचर कम होते जा रहे हैं और खेती बढ़ती जा रही है। इसलिए रबाड़ी लोग धीरे-धीरे पशु-वंश-वृद्धि का काम छोड़ रहे हैं। इस नसल के पशुओं को, जो भारत में सबसे अच्छे पशु हैं, यदि नष्ट होने दिया गया तो बड़ी हानि होगी। इस जाति के अच्छे-से-अच्छे चुने हुए पशुओं के रेवड़ तैयार करने चाहिए और बिना बाहरी पशुओं के संयोग के केवल बुद्धियुक्त चुनाव और छंटाव के द्वारा वंशोन्नति का काम अधिक-से-अधिक स्थानों मे शुरू करना आवश्यक है।

२. गिर

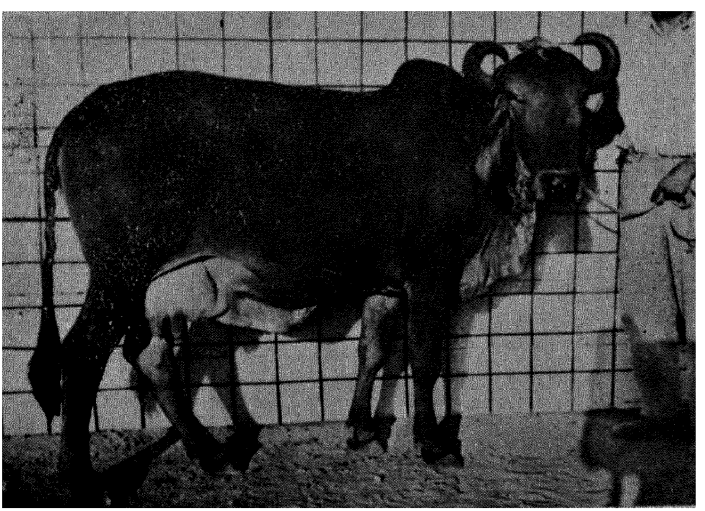
रहने का स्थान—यह दक्षिणी सौराष्ट्र (काठियावाड़) के, खासकर गिर नामक जंगलों और जूनागढ़ के इलाके में एवं पश्चिमी राजपूताना, बड़ौदा और गुजरात प्रदेश के उत्तरी भाग में पाये जाते हैं। ये वैसे तो बम्बई तक मिलते हैं परन्तु वे मूल गिर नसल के पशु नहीं होते, बल्कि मिश्रित और देखने में गिर से मिलते-जुलते होते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—यह भारत के गाय-बैलों की सबसे पुरानी नसल है और मूल नसलों में एक मुख्य नसल है। इस जाति के पशुओं की सन्तान बराबर अपने माता-पिता की भांति होती है। अभी तक यह निश्चित रूप से पता नहीं लगा है कि इस जाति के पशुओं में किसी बाहरी इलाके के पशुओं का संयोग हुआ है या नहीं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु बड़े भारी और लम्बे, परन्तु डील-डौल में अपेक्षाकृत कुछ ठिगने होते हैं। इनमें गाय का वजन लगभग ९००-१००० पौंड, बैल का १०००-११०० पौंड और सांड का १२०० पौंड तक होता है। इनकी खाल पतली, ढीली और रोआं बारीक होता है। इनका रंग अधिकतर चितकबरा, सफेद-काला और गेरुआ होता है। सफेद रंग पर प्रायः अन्य रंगों के चकत्ते और दाग होते हैं। कमर सीधी और चौड़ी होती है। पेट दोनों तरफ खूब फैला हुआ, भारी और बड़ा होता है। छाती खूब बड़ी, चौड़ी और गहरी होती है। सिर चौड़ा, मामूली-सा उठा हुआ और पीछे की ओर थोड़ा फैला हुआ होता है। माथा खूब चौड़ा और उभरा हुआ होता है। ऊपर से चौकोर-जैसा तथा पीछे को फैला होता है। इनके सींग बड़े मजबूत, नीचे से मोटे और जैसे-जैसे आगे को बढ़ते जाते हैं पतले होते जाते हैं, परन्तु सिरे पर नोकीले नहीं होते। ये पीछे की ओर थोड़ा मुड़कर बाहर को होते हुए और थोड़ा ऊपर गोलाकार होकर पीछे को मुड़ जाते हैं। ये छोटे होते हैं। चेहरा लम्बा, कुछ पतला और मुंह के पास चौड़ा तथा गोल-सा होता है। आंखें अच्छे साइज की और चमकीली होती हैं, परन्तु भौंहें भारी होती



गिर नसल का सांड



गिर नसल की गाय

हैं। नाक अच्छी विकसित, और कान बहुत बड़े, चौड़े, मुड़े हुए तथा लटकवां होते है। गर्दन अपेक्षाकृत छोटी, पतली, परन्तु कंधों से सटी हुई होती है। गलकम्बल लटकवा और लम्बा होता है। थुई खूब विकसित और भारी होती है खासकर सांडों की। कूल्हे भरवां भारी तथा चौड़े होते हैं। ऐन खासे बडे परन्तु थोड़े लटकवा होते हैं। थन खूब बडे और अलग-अलग होते है। पूछ खुर तक फैली हुई लम्बी और बडी गुच्छेदार होती है। मूतना भी बहुत बडा तो नही परन्तु लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खान-पान का असर—ये पशु प्रायः ऐसे जलवायु के इलाके मे पाये जाते है जहा वर्षा ३५ इंच होती है। गर्मियों में ११४° फा० तक गर्मी और सर्दियो मे ४०° फा० तक सर्दी होती है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी नही है। चराई के लिए पर्याप्त गोचर भी है और विशेष रूप से लोगों का धन्धा खेती ही है। इसलिए इनकी खिलाई अच्छी हो जाती है। यहा पशुओं को ग्वार और बिनौला उबालकर देने का रिवाज है, इसलिए बढोतरी अच्छी ही नही होती, बल्कि शरीर मे कुछ चरबी भी इकट्ठी हो जाती है जो इनके बदन को ढीला और भारी बना देती है।

गाय और बैल के गुण—इस नसल की गायें दूध देने मे भैंसों के मुकाबले की होती हैं। इनके दूध में मक्खन का अश भी अन्य जाति की गायों के दूध की अपेक्षा अधिक होता है। इस नसल की अच्छी गाय १० से १२ सेर तक दूध दे देती है और कोई-कोई इससे भी अधिक देती है। इन गायों में एक विशेषता यह है कि एक दफा ब्याने के बाद बहुत दिन तक दूध देती है। पहली बार ५ वर्ष मे ब्याती हैं, फिर औसतन सवा से डेढ वर्ष मे ब्याती है। कभी-कभी दो वर्ष मे भी ब्याती है। बैल भारी परन्तु ढीले शरीर के होते हैं और भारी बोझ खीचने के लिए उपयुक्त है। ये अपने इलाके में खेती का काम भली प्रकार कर पाते हैं।

उन्नति के उपाय—इस जाति के पशुओं के गुण निश्चित रूप से बराबर इनकी संतति में आते है। इसलिए किसी बाहर के इलाके के

पशुओं का संयोग कराना उचित नहीं है। यह पशु सर्वांगी है, इसलिए इनकी वंशोन्नति का कार्य बुद्धियुक्त चुनाव और छंटाव की प्रणाली से ही करना उचित है।

: ६ :

राजस्थान के गाय-बैल

राजस्थान के उत्तर-पश्चिम में पश्चिमी पाकिस्तान का भाग सिंध, खैरपुर, बहावलपुर आदि जिले हैं; उत्तर-पूर्व में पूर्वी पजाब, पूर्व में कुछ भाग पश्चिमी पंजाब, उत्तर प्रदेश तथा मध्य-प्रदेश का है; दक्षिण में मध्य-प्रदेश और महागुजरात का है। इस इलाके में नदी-नालों के आसपास के कुछ भाग को छोड़कर, जहां चिकनी और दुमट मिट्टी पाई जाती है, लगभग तमाम भूमि रेतीली है। यहां की भूमि में वांछित खनिज पदार्थों की कमी नहीं है।

इस इलाके में गर्मी और सर्दी खूब पड़ती है, पर वर्षा बहुत कम होती है। यहां औसतन् ६" के लगभग वर्षा होती है। यहां की जलवायु बड़ी खुश्क है। यह भारत का सबसे ज्यादा सूखा इलाका है। इस इलाके में सबसे बड़ी नदी लोनी बहती है। इसकी शाखाएं इसके दक्षिण-पश्चिम के कुछ हिस्से में बहती हैं। शेष भाग में कोई नदी नहीं है और न वहा पर्याप्त वर्षा होती है। कुछ दिन से पंजाब से सटे हुए गंगानगर के निकट-वर्ती इलाके में नहरें चालू की गई हैं। इस इलाके में बहुत अच्छी खेती होती है। अब बीकानेर के इलाके से जैसलमेर तक तथा अन्य उत्तरी-पूर्वी भाग में नहरें निकालकर और गहरे कुओं द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध किया जा रहा है। इस इलाके में खेती बहुत कम होती है, परन्तु जहां सिंचाई के साधन हैं वहां बहुत बढ़िया खेती होती है। यहां अन्य प्रदेशों की भांति चरागाह नहीं हैं; परन्तु जहां भी घास उत्पन्न होती है, वहां वह उत्तम जाति की और बहुत पोषक होती है तथा काफी मिलती है। इसलिए पशु आमतौर से चराई पर ही रहते हैं। जब कहीं चराई कम हो जाती है तो पशुओं को दूर तक, जहां चराई और पानी की सुविधा

होती है, ले जाया जाता है। यहां के पशुओं का अस्थिपंजर और डील-डौल खासा विकसित, मज़बूत और गठीला होता है।

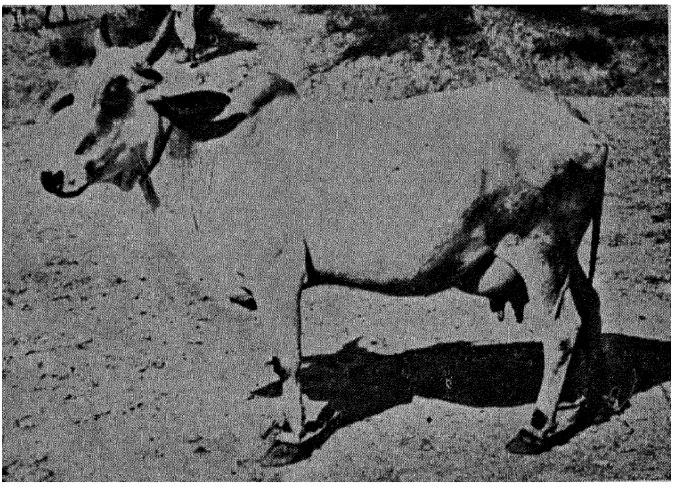
राजस्थान में पश्चिम-उत्तर के इलाके जैसलमेर से सिन्ध तक थारपारकर, उत्तरी इलाके में जैसलमेर से बीकानेर तक और पंजाब से लगे हुए उत्तरी भाग तक राठी, पूर्वी भाग में अलवर के आसपास के इलाके में रथ तथा भरतपुर के पास के इलाके में मेवाती और मध्य राजस्थान में जोधपुर के आसपास के इलाके में नागौर जाति के पशु मिलते है।

इस इलाके के सभी पशु अपनी स्थानिक स्थितियों के अनुसार उत्तम श्रेणी के पशु होते है। थारपारकर और राठी दूध देने में बढ़े हुए हैं। रथ और मेवाती जाति की गायें दूध भी अच्छा देती हैं और इनके बैल भी अच्छे होते है। नागौरी पशु दूध तो साधारण देते है परन्तु उनके बैलों की गिनती भारत के प्रसिद्ध बैलों में की जाती है।

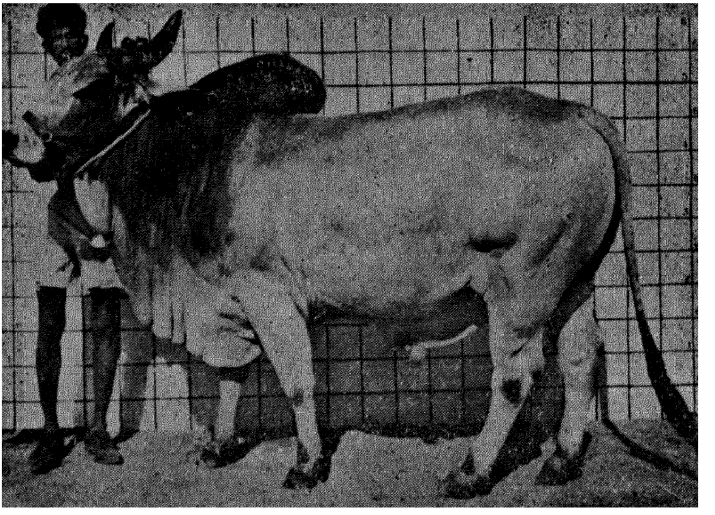
यहां पशु-प्रजनन का कार्य स्थानिक आवश्यकताओं को पूरा करने की दृष्टि से बराबर एक ही विधि से हुआ है। इस कार्य में काफी हद तक सफलता प्राप्त हुई है और इसके फलस्वरूप काफी अच्छे पशु मिलते हैं।

इस इलाके में जनसंख्या कम है खेती भी कम होती है, इसलिए पशु-पालन यहां के निवासियों का एक मुख्य धन्धा होगया है और उनका रहन-सहन बहुत-कुछ उनपर निर्भर करता है। यहां पश्चिमी और उत्तरी राजस्थान में खानाबदोश लोगों के ऐसे गिरोह हैं जिनका पेशा पशु-पालन ही है। वे अपने पशुओं के साथ केवल राजस्थान में ही नही, अपितु राजस्थान के बाहर भारत के अन्य प्रदेशों में भी, जहां अच्छी घास और चारा मिलता है, अपने पशुओं को चराते हुए घूमते रहते हैं। ये पशु-पालन की कला में निपुण होते हैं और अपने पशुओं को भली प्रकार पालते हैं।

राजस्थान में भी धीरे-धीरे जनसंख्या बढ़ रही है। यहां के निवासियों के सामने समुचित खुराक उपलब्ध करने की समस्या उपस्थित हो



थारपारकर नसल की गाय



थारपारकर नसल का सांड

गई है। ट्यूब-वैल और नहरे अधिकाधिक सख्या मे निकालने का प्रयत्न हो रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे खेती-बाडी बढेगी और घास उत्पन्न करनेवाली भूमि घटेगी। इस समय भी पशु-पालको को अच्छी घास के अभाव में बडी कठिनाई और हानि होती है। पशुओ के लिए पर्याप्त पोषक चारा उत्पन्न करने का प्रश्न जटिल हो रहा है। इसका एकमात्र उपाय यही हो सकता है कि जहा सिंचाई उपलब्ध हो या हो सकती हो, वहा चारे की खेती प्रचलित करके पर्याप्त मात्रा मे चारा उत्पन्न किया जाय। खेती बढाने के लिए अच्छे, मज़बूत और अधिक काम करनेवाले फुर्तीले बैलो की आवश्यकता होगी। इस आवश्यकता को भी पूरा करना जरूरी है। इसलिए इस इलाके की वर्तमान स्थिति को देखते हुए यह तो स्पष्ट ही है कि यहा भैसो के लिए या अन्य किसी इकहरे उद्देश्यवाले एकागी पशुओ को किसी हालत में भी प्रोत्साहन नही दिया जा सकता। पशु-उन्नति का कार्य दुहरे उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए करना होगा। यहा गाय खासा अच्छा दूध देनेवाली मिलती है, परन्तु कही-कही उनमें अच्छे, मजबूत और फुर्तीले बैल उत्पन्न करने की क्षमता नही है। ऐसी जाति की गायों में वह क्षमता, बिना दूध कम किये, उत्पन्न करनी और बढानी होगी।

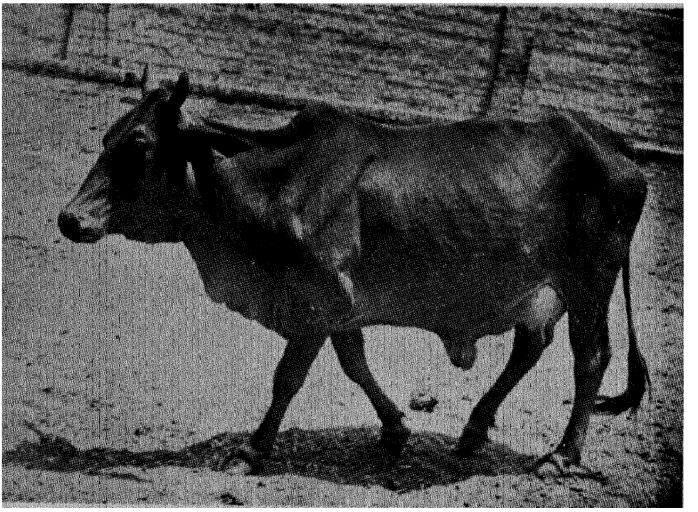
१. थारपारकर

रहने का स्थान—ये सिंध के निकट थारपारकर जिले से राजस्थान के मैदानी जिलों तक तथा जैसलमेर से जोधपुर तक मिलते हैं।

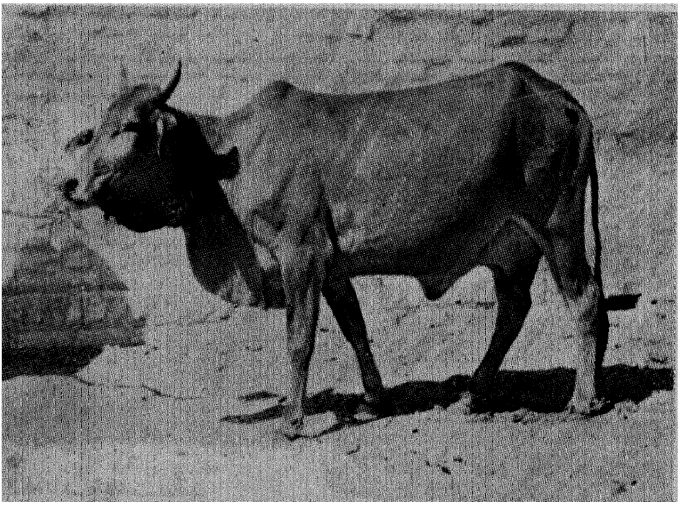
वंशोत्पत्ति का इतिहास—जिस इलाके मे इस जाति के पशु पाये जाते है वह वीरान, सूखा और जगली इलाका है। यहां खेती बहुत नहीं होती, इसलिए वहां के लोगों का निर्वाह पशु-पालन पर ही निर्भर करता है और वे पशु-पालन की विद्या को समझते भी हैं। उन्होंने वहां की स्थिति के अनुसार इनमें अधिक-से-अधिक गुण पैदा करने का प्रयत्न किया है और इसमें उन्हें सफलता भी मिली है। यहां की गाय अच्छा दूध

देनेवाली होती है और बैल भी खासे अच्छे होते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस वंश की उत्पत्ति के प्रारम्भ में उत्तर-भारत के सफेद और भूरे पशुओं तथा गिर जाति के एवं सिंधी नसल के पशुओं का परस्पर संयोग हुआ हो। इन पशुओं को सफेद सिन्धी भी कहते हैं, क्योंकि ये सिवाय रंग के सभी बातों में सिन्धी पशुओं से काफी मिलते हैं। इनको एक नसल के पशु कहा जा सकता है क्योंकि ये अपने जैसी सन्तान बराबर उत्पन्न करते हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये उत्तरी भारत के पशुओं के प्रतिरूप होते हैं। ये डीलडौल में मंझले कद के, छोटे पैरोंवाले और लम्बे शरीर के होते हैं। गाय का वजन ७००-७५० पौंड, बैल का ७५०-८०० पौंड और सांड का ८००-८५० पौंड तक होता है। खाल और रोआं बीच के दर्जे के होते हैं। ये सफेद और भूरे रंग के होते हैं। खाल ज़रा ढीली होती है। कमर सीधी, पेट खासा विकसित और छाती विकसित परन्तु बहुत चौड़ी नहीं होती। सिर चौड़ा और एक-सा होता है। माथा, आंखों व सिर के बीच में काफी चौड़ा और कुछ उभरा हुआ तथा मुंह की ओर भिड़ा होता जाता है। सींग लम्बाई में मध्यम श्रेणी के और हरियाना जाति के पशुओं की तरह ऊपर को जाकर अर्द्ध-धनुषाकार होते हैं। ये सिरे पर विशेष नोकीले नहीं होते। चेहरा मंझले माप का परन्तु चौड़ा, भरा हुआ और लम्बा होता है। आंख खासी बड़ी होती है। आंखों के चारों तरफ कुछ कालिमा होती है। नाक बीच के दर्जे की, कान बड़े और कुछ मुड़े हुए और लटकवां होते हैं। गर्दन बीच की जाति की, छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल बीच की जाति का लटकवां होता है। थुई मध्य जाति की, कूल्हे अच्छे विकसित और चौड़े होते हैं। ऐन बीच की जाति के बड़े और फैले हुए होते हैं। थन विशेष बड़े नहीं होते, परन्तु खासे विकसित और अलग-अलग होते हैं। पूंछ विशेष लम्बी न होकर काली गुच्छेदार होती है। मूतना मध्यम दर्जे का होता है।



राठी नसल की गाय



राठी नसल की गाय

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां सर्दी-गर्मी ३५° से १२०° फा० तक और वर्षा औसत में १० इच प्रतिवर्ष होती है। ये पशु ऐसे भाग में पाये जाते हैं जहां वर्षा कम होने के कारण खेती कम होती है और रेत के टीबे या टीले अधिक है। ऐसे स्थानों में इन्हे खाने को केवल रेगिस्तानी झाडिया अथवा फसल का बचा हुआ भाग मिलता है। परन्तु जहा भी घास होती है वह खूब पौष्टिक होती है। प्रायः इस प्रकार की चराई पर यहा के पशु निर्वाह करते है। इस इलाके में वांछित खनिज पदार्थ मिल जाते हैं, इसलिए यहा के पशुओं का अस्थि-पिंजर पुष्ट होता है। और शरीर विशेष भारी नही होता।

गाय और बैल के गुण—गाय दूध देने में कद के लिहाज से बहुत अच्छी होती है। प्रायः ८ या ९ सेर तक दूध देती है। बहुत अच्छी गाय १२-१३ सेर तक दूध देती देखी गई है। पहली बार चार-साढे चार वर्ष मे ब्याती है, फिर बाद मे हर वर्ष ब्याती है। बैल खासे अच्छे होते हैं तथा हल जोतने और बोझ खीचने के काम आते हैं, परन्तु फुर्तीले, विशेष बोझ ढोनेवाले और चौकन्ने व दौड़नेवाले नही होते।

उन्नति के उपाय—ये अपने इलाके के खासे अच्छे पशु हैं। वहां की आवश्यकताओं की दृष्टि से इनमें सब गुण हैं। इसलिए इस जाति की वशोन्नति का कार्य समुचित चुनाव और छटाव द्वारा ही, बिना बाहरी जाति के पशुओ के संयोग के, होना चाहिए। ये पशु हरियाना जाति के पशुओं से काफी मिलते-जुलते हैं। यदि चुने हुए, अधिक दूध देनेवाले हरियाना जाति के पशुओ से इनका सयोग कराया जाय तो सम्भवतः इनकी सतान मे इनसे भी अच्छे बैल पैदा हो सके। परन्तु यह प्रयोग खतरे से खाली नही है।

२. राठी

रहने का स्थान—ये पशु जैसलमेर के उत्तर-पूर्व में, भारत तथा पाकिस्तान की सीमा के साथ-साथ अनूपगढ़ तक, और जैसलमेर,

बीकानेर, बाड़मेर और जालौर जिलों में मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—यह इलाका वीरान और सूखा है। यहां वर्ष में औसतन ६ इंच वर्षा होती है। यहां की भूमि रेतीली है और रेत के टीले या टीबे बहुतायत से पाये जाते हैं। यहां खेती बहुत कम होती है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमनेवाले लोग (खानाबदोश) पशु-पालन करते हैं और अपने पशुओं को प्रायः चराई पर ही रखते हैं। जब एक जगह घास खत्म हो जाती है तब ये दूसरे स्थान को चले जाते हैं। ये लोग पशु-पालन की कला में निपुण होते हैं और पशु-प्रजनन के हुनर को भी खूब समझते हैं। क्योंकि इनकी जीविका केवल पशु-पालन पर ही निर्भर करती है, इसलिए इन्होंने राठी जाति के पशुओं में दूध देने के गुण को विशेष रूप से प्रवेश करने का प्रयत्न किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि साहीवाल नसल के पशुओं से जैसलमेर के दक्षिण-पश्चिम के थारपारकर और सिंधी जाति के पशुओं का संयोग कराकर अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिए राठी जाति के पशु उत्पन्न किये हैं। इसमें इन्हें पूरी सफलता मिली है। ये पशु दूध देने में भी अच्छे होते हैं और यद्यपि इनके बैल तेज और फुर्तीले नहीं होते, फिर भी उस इलाके में काम करने योग्य होते हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये अच्छे विकसित और मंझले कद के, लम्बे शरीरवाले पशु होते हैं। गाय का वजन लगभग ८०० पौंड, बैल का ८५०-९०० पौंड तथा सांड का ९००-९५० पौंड तक होता है। खाल बीच की जाति की और रोआं छोटा होता है। इनका रंग आमतौर से गहरा गेरुआ, सफेद, हल्का लाल और गहरा भूरा तथा काले रंग के चकत्ते और दाग लिये हुए चितकबरा होता है। कमर सीधी और चौड़ी तथा पेट खूब विकसित, दोनों तरफ फैला हुआ और गहरा होता है। छाती खासी चौड़ी और विकसित होती है। सिर कम उठा हुआ बीच के दर्जे का होता है। माथा चौड़ा होता है। सींग नीचे से भारी, ऊपर से पतले, गोलाकार और साहीवाल जाति के पशुओं

से मिलते-जुलते होते है। चेहरा विशेष लम्बा नही होता, परन्तु भरा हुआ होता है। आख और नाक बीच के दर्जे के, खूब विकसित होते हैं। कान बडे और लटकवां होते है। गर्दन छोटी परन्तु भरवां होती है। गलकम्बल मझली जाति का लटकवा, साहीवाल से मिलता-जुलता होता है। थुई साधारण और कूल्हे खूब विकसित और चौडे होते हैं। ऐन फैले हुए और बडे तथा साहीवाल से मिलते-जुलते होते हैं। थन मंझले दर्जे के परन्तु बहुत फैले हुए नही होते। पूछ लम्बी काली, गुच्छेदार और जमीन को छूती हुई होती है। मूतना विकसित और मझले दर्जे का लटकवा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—इस इलाके मे गर्मी-सर्दी खूब, प्राय: ३३°से १२०°फा० तक होती है। वर्षा बहुत कम होती है। वर्ष मे ६ इच के लगभग औसत वर्षा होती है। जलवायु बडी खुश्क, पर स्वास्थ्य-वर्द्धक होती है। यहा वांछित खनिज पदार्थों की कमी नही है, इसलिए यहां के पशुओ का अस्थिपजर खासा मजबूत और विकसित होता है। इस इलाके में खेती बहुत कम होती है। यहा काफी दूर तक बहुत उत्तम जाति की पोषक घास पैदा होती है इसलिए पशु आम तौर से विशेषतया चराई पर ही रहने हैं। जब कभी कही चराई कम हो जाती है तो पशुओं को दूर, जहां चारा और पानी की सुविधा होती है, ले जाया जाता है। पशु-पालक बड़े प्रेम से पशुओं की देख-भाल और खिलाई-पिलाई करते हैं। उपर्युक्त समय पर वे उनको ग्वार घी, और तेल भी आवश्यकतानुसार देते हैं। इसलिए अकाल के समय या पानी की बहुत कमी के समय को छोड़कर, यहा के पशु बड़े भले-चगे दिखाई देते है।

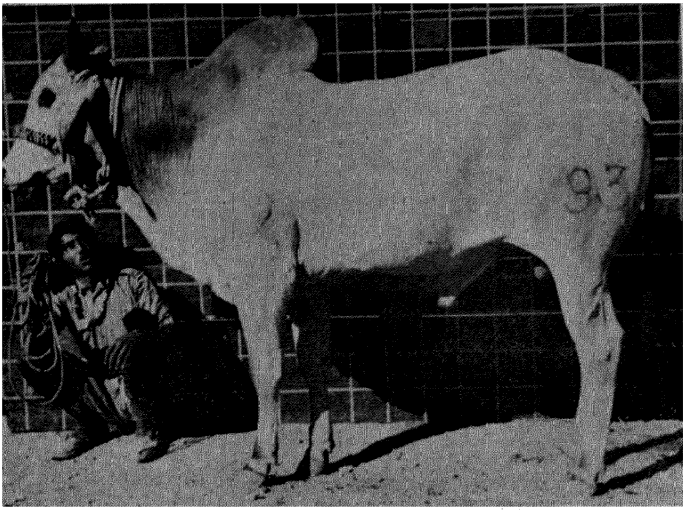
गाय और बैल के गुण—यहा के गो-पालक, गो-पालन के हुनर को भली प्रकार समझते है। इसलिए पशुओं को खूब खिलाते-पिलाते है और उनकी अच्छी देखभाल करते है। गाय आमतौर से ७-८ सेर दूध देती है। अच्छी गाय १०-१२ सेर तक भी दे देती है। इनके दूध में मक्खन का अंश काफी होता है। लगभग ५ प्रतिशत चिकनाई तो इनके दूध में आम

तौर से पाई जाती है, परन्तु ६ प्रतिशत चिकनाईवाला दूध देनेवाली गायें भी देखने में आती हैं। यहां दूध की बिक्री कम है, इसलिए यहां पर प्रायः दूध में से घी निकाला और बेचा जाता है। बैल देखने में मजबूत, पर ढीले डील-डौल के होते हैं और काम करने में सुस्त तथा धीमी गति से चलनेवाले होते हैं।

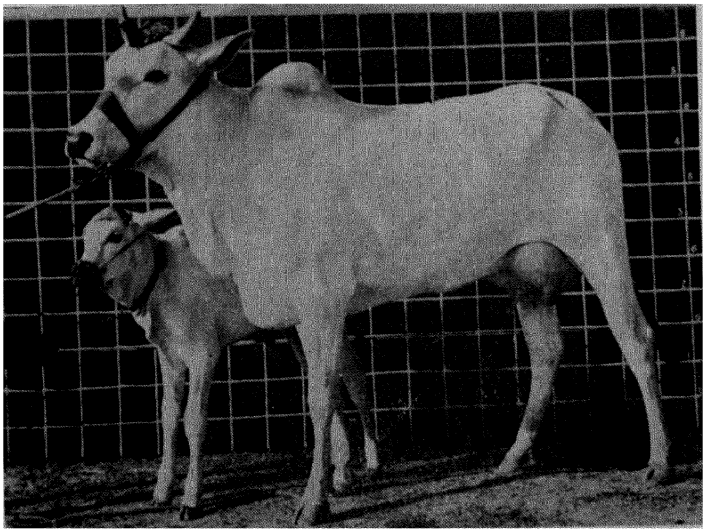
उन्नति के उपाय—इनकी उन्नति भी इसी जाति के पशुओं के समुचित चुनाव और छंटाव द्वारा होनी चाहिए। इस इलाके के कुछ हिस्से में नहर से सिंचाई आरम्भ होगई है और सिंचाई के साधनों को शीघ्र ही इस इलाके में बढ़ाने का प्रयत्न हो रहा है। कुछ अर्से से गंगानहर और बीकानेर के पास खूब खेती होने लगी है। आशा है, शीघ्र ही इस इलाके के अन्य हिस्सों में भी इसी भांति खेती होने लगेगी। इसलिए तगड़े और जल्दी काम करनेवाले बैलों की अधिकाधिक मांग हो जायगी। अतः यह आवश्यक प्रतीत होता है कि राठी जाति के बैल सबसे मजबूत और अधिक काम करनेवाले तथा फुर्तीले हों, पर गायों का दूध यथासम्भव कम न हो। इस दृष्टि से इनमें इन गुणों का समावेश होना चाहिए। इसके लिए दो ही सुझाव हो सकते हैं। प्रथम तो थारपारकार जाति के पशुओं से इनका संयोग कराया जाय, ताकि दूध पर बिना खराब असर पड़े बैल अबसे अच्छे हों। दूसरे हरियाना या रथ जाति के पशुओं से इनका संयोग कराया जाय। दूसरे सुझाव में अच्छे बैलों की उन्नति पहले सुझाव की अपेक्षा शीघ्र और अधिक होने की गुंजाइश है। दूध तो दोनों सुझावों में कायम रखा जा सकता है। हरियाना और रथ के इलाके में भी सिंचाई के साधन हैं, राठी के इलाके में वे साधन होनेवाले हैं। इसलिए दोनों में से दूसरे सुझाव में अपेक्षाकृत अधिक समानता होगी।

३. नागौर

रहने का स्थान—ये पशु जोधपुर और इसके आसपास के पूर्वी इलाके में पाये जाते हैं। नागौर इनका केन्द्र है, इसलिए ये नागौरी



नागौरी नसल का सांड



नागौरी नसल की गाय

पशु कहलाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—जिस इलाके में नागौर जाति के पशु पाये जाते हैं, वहां रेल व सडकें कम हैं। इसलिए मनुष्यों और माल के यातायात के लिए ऊंटों और बैलगाडियों पर ही निर्भर करना पड़ता है। इसी दृष्टि से इनकी वशोन्नति हुई है। इस इलाके में खेती कम होती है, इसलिए यहां के लोग जीविका के लिए इन्ही पर निर्भर करते हैं और पशुओं की खिलाई-पिलाई का पूरा ध्यान रखते हैं। इस क्षेत्र में आबादी कम है, अतः यहां के पशु डील-डौल में मजबूत और गुणयुक्त होते हैं।

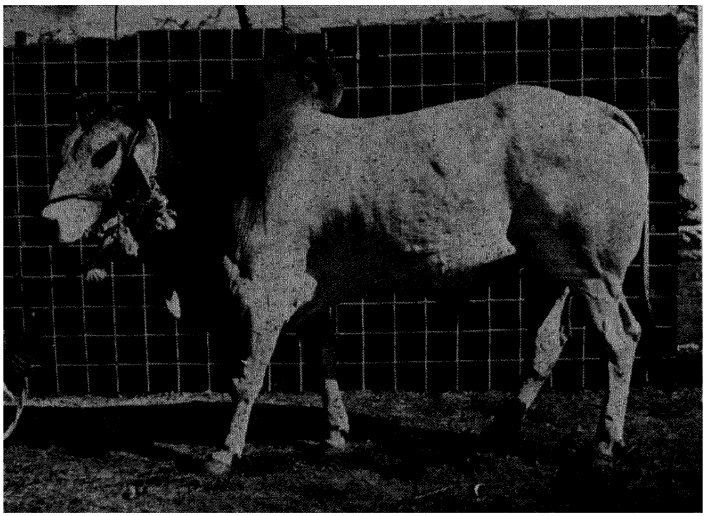
शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु हल्के, बड़े मजबूत और सुन्दर होते हैं। कद मे खासे ऊचे, लम्बे और पतले पैरोंवाले होते हैं। गाय का वजन ७०० पौंड, बैल का ७००-८०० पौंड और सांड का ७५०-८०० पौंड तक होता है। खाल और रोआं दोनों ही पतले, बारीक और सुन्दर होते है। गाय, बैल और सांड तीनों का ही रंग सफेद और भूरा होता है। कमर सीधी और खूब लम्बी, पेट चारों तरफ फैला हुआ परन्तु हल्का होता है। छाती बीच के दर्जे की विकसित होती है। सिर चौड़ा और बीच मे मामूली-सा उठा हुआ होता है। माथा चौड़ा और एकसार होता है। इनके सीग बड़े सुन्दर, न बहुत मोटे और न बहुत पतले होते है। ये सिरे पर नोकीले भी नही होते। इनके सीग सिर से निकलकर दोनों तरफ बाहर को फैलकर, गोलाकार होते हुए ऊपर को उठकर एक-दूसरे की तरफ मुड़े जाते है। इनका चेहरा लम्बा, आंख खूब विकसित और चौकन्नी होती है। नाक साधारण, कान बड़े और विशेष लटकवां नही होते, परन्तु बड़े साफ-सुथरे होते हैं। गर्दन विशेष मोटी तो नहीं, परन्तु छोटी और खूब मजबूत होती है। गलकम्बल छोटा और कम-लटकवां होता है। थुई खूब विकसित परन्तु छोटी होती है। कूल्हे अच्छे चौड़े और विकसित होते है। ऐन बीच के दर्जे के फैले हुए होते हैं। थन विशेष बड़े नही होते और उनका रुझान सटे हुए होने का होता है। पूछ छोटी, पतली परन्तु गुच्छेदार काली होती है। मूतना छोटा

और खूब सटा हुआ होता है। इन पशुओं के शरीर की विशेषता यह है कि वे प्रायः आगे से भारी और पीछे से शरीर में हल्के होते हैं।

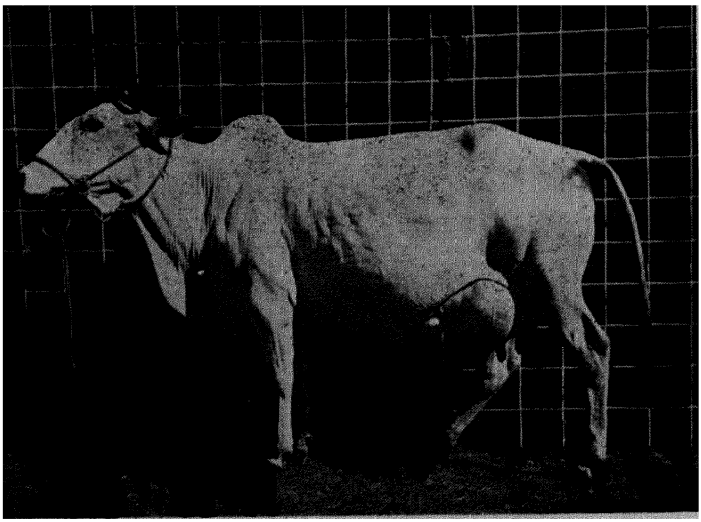
जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम ३३° से ११८° और वर्षा करीब १२ इंच प्रतिवर्ष होती है। ये पशु जोधपुर स्टेट के इलाके में पाये जाते हैं। यह इलाका सूखा है परन्तु यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी नहीं है। इसलिए इनका शरीर काफी विकसित, गठीला और मजबूत हड्डीवाला होता है।

गाय और बैल के गुण—गाय दूध कम देती है। साधारण गाय प्रायः ३-४ सेर दूध देती है, परन्तु बहुत अच्छी गाय ६-७ सेर दूध देने वाली भी होती है। पहले यह लगभग ५ वर्ष में ब्याती है, बाद में हर डेढ़ से दो वर्ष तक ब्याती रहती है। बैल अपनी तेज चाल के लिए प्रसिद्ध हैं। ये हल्के, बड़े मजबूत और सुन्दर होते हैं, परन्तु पहाड़ी और चिकनी मिट्टी के इलाके में रो देते हैं। भारतवर्ष के उत्तरी भाग के दूर-दूर के लोग इस जाति के जानवरों को परबतसर के मेले पर खरीदने आते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की आधुनिक स्थिति पर विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि नागौर नसल के जानवर वहां की गाय-बैल सम्बन्धी जरूरतों को भली प्रकार पूरी कर रहे हैं। इनकी उन्तति समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से ही करनी चाहिए। जहां तक हो, इनमें बाहर के खून का प्रवेश न होने देना चाहिए। इस जाति के पशुओं में शीघ्र दूध बढ़ाने के लिए हरियाना या कांकरेज जाति के पशुओं का संयोग कराया जा सकता है। संयोग कराने में इतना खतरा अवश्य है कि हरियाना जाति के पशु इनके मुकाबले में अधिक वजन के और सुस्त होते हैं तथा कांकरेज जाति के पशु इनसे काफी भारी होते हैं और दोनों ही जाति के पशु इनसे अधिक खाते हैं।



रथ नसल का सांड



रथ नसल की गाय

४. रथ

रहने का स्थान—ये पशु अलवर तथा उसके आसपास की उत्तर-पश्चिम की रियासतो तथा उनके आसपास के भागो में पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—रेतीली धरती के कम वर्षा के इलाके में ये पशु पाये जाते हैं। वहा खेती कम होती है और गोचर भी कम ही हैं। इसलिए इनकी उत्पत्ति मे यह ध्यान रखा गया है कि जहां तक हो, कम खानेवाले और रेतीली धरती में माफिक आनेवाले पशु हों। हरियाना के पशुओं मे से छोटे कद के पशु और नागौरी छोटे पशुओं के संयोग से इन पशुओं की उत्पत्ति हुई है, ऐसा प्रतीत होता है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—डील-डौल और कद में ये पशु छोटे होते हैं, परन्तु डील-डौल के अनुपात में इनकी लम्बाई अधिक होती है। इनमे गाय का वजन ७००-७५० पौंड, बैल का ७५०-८०० पौड और साड का ८००-८५० पौड होता है। खाल पतली और रोआं छोटा होता है। इनका रग सफेद होता है। साड की गर्दन, माथा और थुई भूरे रग के होते हैं। कमर हरियाना-किस्म की सीधी, पेट डील-डौल के अनुपात में हरियाना की तरह दोनों तरफ को फैला हुआ और भारी होता है। छाती बहुत चौड़ी तो नही होती, लेकिन खासी विकसित होती है। सिर और माथा मंझले दर्जे के होते हैं तथा विशेष चौड़े नही होते हैं। सीग मजबूत और छोटे होते है। ये माथे से निकलकर आगे को होते हुए ऊपर को गोलाकार रूप में उठे होते है। चेहरा लम्बा, पतला और भरा हुआ होता है। आख अच्छी विकसित और चौकन्नी होती है। भौंह छोटी होती है। नाक साधारण परन्तु कुछ छोटी होती है। कान छोटे और घुमावदार होते हैं और थोड़े खड़े होते हैं। गर्दन मंझले साइज की छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल मझले साइज का और थोड़ा लटकवां होता है। थुई खासी विकसित होती है, परन्तु बहुत बड़ी नही होती। कूल्हे शरीर के अनुपात में अच्छे खासे और चौड़े होते हैं। ऐन विकसित, परन्तु लटकवा नही होते। थन बीच की जाति के,

परन्तु कुछ छोटे होते हैं। पूंछ बीच की जाति की, काले बालों के गुच्छे-वाली होती है। मूतना छोटा और शरीर से सटा हुआ होता है, पर लटकवां नहीं होता।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्राय: ३४° से ११६° फा० तक रहता है और प्रतिवर्ष वर्षा २० इंच के लगभग होती है। ये पशु भारत के ऐसे भाग में पाये जाते हैं जहां चरागाह कम हैं। रेतीला और कम वर्षा का इलाका होने के कारण यहां खेती भी कम होती है। यहां पशुओं की खुराक की कमी को दूर करने के लिए रातब (खली, दाना), खास करके ग्वार का दाना, खिलाने का रिवाज है। इसलिए यद्यपि इनका अस्थिपंजर, शरीर और कद छोटा होता है परन्तु ये पशु मजबूत, गठीले और खासा अच्छा दूध देनेवाले एवं खेती, सिंचाई और बोझ खींचने में अच्छे होते हैं।

इस इलाके में खनिज पदार्थों की कमी नहीं है। यहां कुओं से सिंचाई होती है और पशुओं के लिए हरा चारा भी बोया जाता है।

गाय और बैल का गुण—इनका पालन-पोषण कम लागत में हो जाता है, इस कारण ये गरीबों के पशु कहलाते हैं। गाय ५-६ सेर दूध देती है। कोई-कोई इससे ज्यादा १०-१२ सेर तक भी देती है। गाय पहली बार करीब ४ वर्ष में ब्याती है और बाद में प्रति वर्ष या सवा वर्ष में ब्याती है। बैल खेती और बैलगाड़ी खींचने के काम के लिए बहुत अच्छे होते हैं।

उन्नति के उपाय—ये पशु अपने इलाके के लिए ठीक हैं। इनमें कोई खास परिवर्तन की आवश्यकता नहीं मालूम देती। इनकी उन्नति इस जाति के अच्छे चुनैता पशुओं के समुचित चुनाव और छंटाव के साथ बिना किसी बाहरी इलाके के पशुओं के संयोग के करनी चाहिए।

: १० :

पंजाब और हिमाचल-प्रदेश के गाय-बैल

पंजाब और हिमाचल-प्रदेश भारतवर्ष के उत्तर में स्थित हैं। इसके उत्तर में कश्मीर, पूर्व में हिमाचल-प्रदेश तथा उत्तरप्रदेश, दक्षिण में दिल्ली तथा राजस्थान का कुछ भाग, पश्चिम में राजस्थान तथा पाकिस्तान का इलाका है। विभाजन से पहले यहां पांच नदियां बहने के कारण इस प्रदेश का नाम पंजाब पड़ा था। अब भी यहां छोटी नदियों के अतिरिक्त सतलज तथा व्यास नदियां बहती हैं। इसकी और उत्तरप्रदेश की सीमा पर यमुना नदी है। इनसे खूब अधिक संख्या में नहरें निकाली गई हैं जो यहां की भूमि को सींचती हैं।

भारत में कृषि तथा गोपालन के लिए यह प्रदेश सबसे अच्छा समझा जाता है। यहां की भूमि रेतीली, दुमट और थोड़ी चिकनी होती है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की प्रायः कमी नहीं है और जहां कहीं कमी है, वहां बहुत कम है।

यहां गर्मियों में अधिक गर्मी, जाड़ों में अधिक जाड़ा और वर्षा ऋतु में साधारण वर्षा होती है। यहां की जलवायु खुश्क है।

पंजाब अपनी नदियों और नहरों के लिए भारत में प्रसिद्ध है। यहां सिंचाई के साधन भारत के अन्य इलाकों की अपेक्षा अधिक उपलब्ध है। नहरों के अलावा यहां ट्यूब-वैलों, रहटों आदि से भी सिंचाई होती है। इस इलाके में खेती बहुत बढ़िया होती है। यहां पशुओं के लिए भारत के अन्य भागों की अपेक्षा सबसे अधिक और उत्तम चारा बोया जाता है, इसलिए यहां के पशुओं का शरीर खूब विकसित हुआ है। यहां की हरियाना नसल के गाय और बैल दोनों ही तथा साहीवाल नसल की गाय अपनी श्रेष्ठता के लिए समस्त भारत में प्रसिद्ध हैं।

अम्बाला-कमिश्नरी के दक्षिण के जिले करनाल, रोहतक, जींद, हिसार, महेन्द्रगढ़, गुड़गांव और पश्चिमी राजस्थान के इलाके में भारत के प्रसिद्ध हरियाना पशु मिलते हैं। ये पशु खूब दूध देनेवाले, भारी काम करनेवाले, तेज, फुर्तीले और दमदार होते है।

हिमाचल-प्रदेश में किसी खास नसल के पशु नहीं होते। इस प्रदेश से लगे हुए पंजाब के इलाके और पहाड़ी जाति के पशुओं के परस्पर संयोग से जो पशु उत्पन्न हुए हैं प्रायः वे तथा पहाड़ी जाति के पशु यहां मिलते हैं।

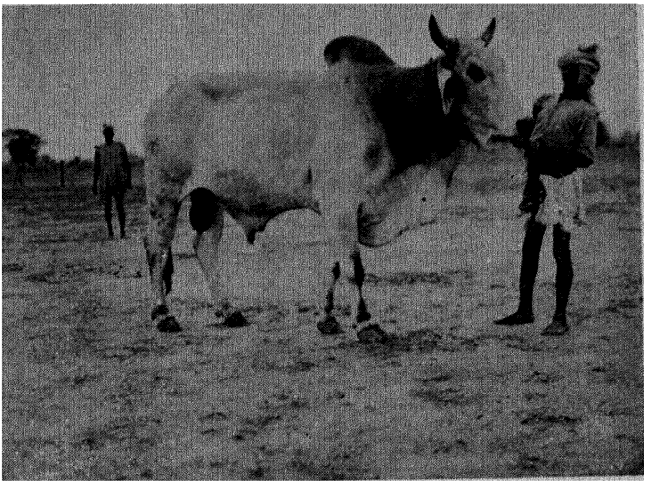
पंजाब में कई प्रसिद्ध कैटिल-फार्म, सैनिक डेरी-फार्म तथा ऐग्रीकल्चर कालेज हैं जहां पशु-उन्नति के लिए प्रजनन का कार्य विधिवत् हुआ है और उसमें सफलता भी मिली है।

यहां के निवासी खूब हट्टे-कट्टे तथा मेहनती होते है। खेती-बाड़ी उनका मुख्य धन्धा है। ये लोग घी, दूध तथा छाछ के बड़े शौकीन होते हैं, इसलिए ये लोग गाय, बैल तथा भैंस का भली प्रकार पालन-पोषण करते हैं।

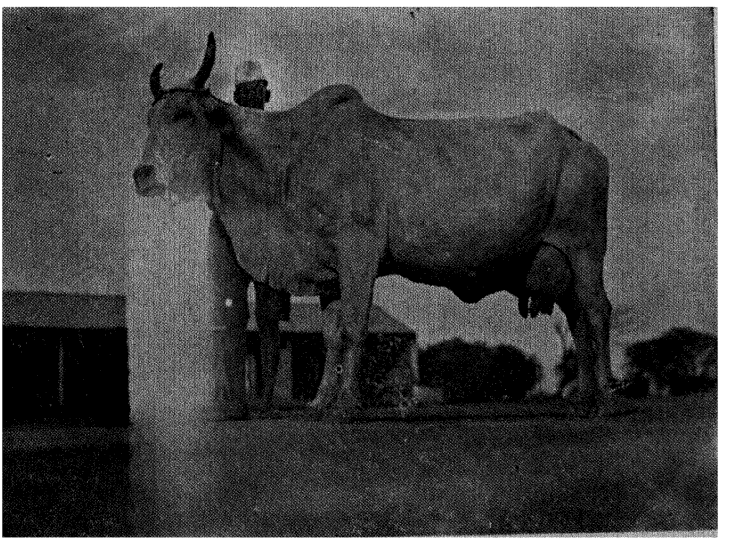
उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यहां के रहनेवालों को अच्छा दूध देनेवाली गाय तथा अच्छे काम करनेवाले बैल दोनों की ही आवश्यकता है जो किसी हद तक हरियाना नसल के पशुओं से पूरी होती है। साहीवाल नसल का मूल स्थान पाकिस्तान में है। यद्यपि वे पंजाब के कुछ उत्तरी-पश्चिमी भाग में काफी संख्या में मिलते हैं और पंजाब के अलावा भारतवर्ष के अन्य भागों में मिलते हैं इस प्रदेश की आवश्यकता को पूरा करने के लिए हरियाना नसल पर निर्भर किया जा सकता हैं। उनकी उन्नति बिना बैल के गुण कम किये और बिना बाहरी पशुओं के संयोग के, दूध बढ़ाने की दृष्टि से समुचित एवं बुद्धियुक्त चुनाव और छंटाव की प्रणाली की जा सकती है।

१. हरियाना

रहने का स्थान—इनका निवास-स्थान अम्बाला कमिश्नरी के



हरियाना नसल का सांड



हरियाना नसल की गाय

दक्षिण-पश्चिम के जिले करनाल, रोहतक, जीद, हिसार, महेन्द्रगढ़, गुडगाव और पश्चिमी राजस्थान के इलाके मे है। परन्तु भारत की यह एक ऐसी नसल है, जिसे अपने गुणों के कारण भारत के लगभग सभी हिस्सों के लोग ले जाते है और प्राय: दक्षिण भारत को छोड़कर यह भारत के सब हिस्सों में देखने में आती है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—हरियाना के इलाके के रहनेवाले गाय-बैलों के पालने के बड़े शौकीन होते हैं। वहा माल ढोने और मनुष्यों की सवारी के लिए गाडी, मझोली और रथ का खूब प्रयोग होता है। इस इलाके में वर्षा भी कम होती है और नहरें भी कम हैं। इस कारण यहा कुओं से पानी खीचकर खेत सीचने का रिवाज है। यहा के रहनेवालो का मुख्य धन्धा खेती ही है। यहां की भूमि रेतीली और दुमट है, इसलिए वशोत्पत्ति के कार्य मे यह ध्यान रक्खा गया था कि यहा के पशु मजबूत, तेज, फुर्तीले, खेती का काम भली प्रकार करनेवाले, बोझ ढोनेवाले और रथ खीचने मे तेज हो। यहा के रहनेवाले आमतौर से शाकाहारी और घी, दूध तथा छाछ के बड़े शौकीन होते है। इसलिए यहा की गाय अधिक दूध देनेवाली हों, इस बात को सन्मुख रखते हुए यहां वशोन्नति का कार्य हुआ। फलस्वरूप यहा के बैल और गाय दोनों ही बढिया काम करनेवाले तथा दूध देनेवाले होते हैं।

अग्रेजों के समय मे हिसार मे एक बहुत बडा 'रिमाउण्ट डिपो' था। उस समय अंग्रेजी फौज की आवश्यकता को पूरा करने के लिए भारी बैलों की आवश्यकता को दृष्टि में रखते हुए कुछ कांकरेज जाति के भारी और बढ़िया साडों से यहा की गायो का सयोग कराया गया। डिपो मे काफी अर्से तक प्रजनन का कार्य हुआ। इस कारण वहां इसजाति के बड़े और भारी कद के पशुओं की एक नसल बन गई जिसे हिसार-नसल के पशु भी कहते हैं। परन्तु साधारणतया ये और असली हरियाना के पशु एक-जैसे गुण के होने के कारण हरियाना नसल के नाम से ही प्रसिद्ध हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये लम्बे-चौड़े, डील-डौल के और बड़े कद के होते हैं। इनमें गाय का वजन ८०० से ८५० पौंड, बैल का ८५०-९५० पौंड और सांड का ९५०-१००० पौंड तक होता है। खाल बदन से चिपकी हुई, पतली, बारीक और बढ़िया रोएंवाली होती है। गाय सफेद और सफेद तथा हल्के भूरे रंग की होती है। बैल प्रायः सफेद होते हैं। सांड सफेद होते हैं, परन्तु अक्सर उनका माथा, गर्दन और थुई के पास का हिस्सा और पिछले पैर के पुट्ठे हल्के भूरे व भूरे रंग के होते हैं। कमर करीब-करीब सीधी, परन्तु थुई के पास नीचे को जरा झुकी हुई और चौड़ी होती है। पेट दोनों तरफ खूब फैला हुआ, बड़ा और नीचे की तरफ भी काफी फैला हुआ और भारी होता है। छाती चौड़ी और भरवां होती है। सिर चौड़ा, हल्का और सुडौल होता है। माथा चौड़ा होता है। सींग अच्छे मजबूत, शुरू में दोनों तरफ को निकले हुए, फिर थोड़ा आगे को गोलाकार रूप में होते हुए थोड़ा ऊपर को जाकर पीछे को एक-दूसरे की तरफ मुड़े होते हैं। ये सिरे पर विशेष नोकीले नहीं होते। सामने या बराबर से देखने पर धनुषाकार के रूप में दिखाई देते हैं। चेहरा लम्बा और पतला, परन्तु आंखों के पास थोड़ा चौड़ा होता है। आंख बड़ी और चौकन्नी होती है। भौंह छोटी, नाक खासी विकसित और कान छोटे, पतले, परन्तु लटकवां नहीं होते। जब ये गर्दन ऊपर करते हैं तब इनके कान खड़े हो जाते हैं। गर्दन मंझले नाप की, पतली, लंबी और मजबूत होती है। परन्तु सांडों की गर्दन और खासकर हिसार के सांडों की गर्दन मोटी, चौड़ी और भारी होती है। गलकम्बल बीच की जाति का थोड़ा लटकवां होता है। थुई खूब विकसित और भारी होती है। कूल्हे चौड़े और भरे हुए होते हैं। ऐन खूब फैले हुए और विकसित होते हैं। थन बीच के माप के और अलग-अलग होते हैं। पूंछ मध्यम श्रेणी की, काले तथा लम्बे बालों की, गुच्छेदार होती है। मूतना मध्यम श्रेणी का परन्तु कम-लटकवां होता है।

हरियाना पशुओं की यह विशेषता है कि उनके बदन पर चर्बी नहीं होती और प्रायः शरीर के हरेक हिस्से की हड्डियां इतनी विकसित होती हैं कि वे साफ दिखाई देती हैं। ये पशु अक्सर अपनी गर्दन ऊपर रखते हैं। यदि इन्हें अन्य पशुओं के रेवड़ मे मिला दिया जावे तो ये सब पशुओं के सरदार-से प्रतीत होते हैं।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ३८° से ११८° फा० तक होता है, अतः ये पशु प्रायः रेतीली और दुमट मिट्टी की धरती में बहुतायत से पाये जाते हैं। यहा वर्षा प्रतिवर्ष करीब २५ इंच होती है। वांछित खनिज पदार्थों की कमी नही है। इसके अलावा यहा खेती सघन नही होती, पर विस्तृत रूप से होती है। यहां के तृण, घास, भूसा आदि जो पदार्थ पशुओं को खिलाये जाते है, उनमें पोषण-शक्ति बहुत होती है। यहां की जनसंख्या भी भूमि के अनुपात से कम है। इसलिए इनको पर्याप्त चराई तथा चारा मिल जाता है और इनके शरीर की बढ़ोतरी अच्छी हुई है। जिस इलाके में ये पशु पाये जाते हैं, उस इलाके में प्रायः ज्वार, बाजरा, जौ, गेहूं, चना, ग्वार, कपास आदि की खेती होती है। यहां के पशुओं को केवल बढिया जाति का चारा ही नही खिलाया जाता, बल्कि समय-समय पर बढिया दाना और बिनौला भी खिलाया जाता है। इसका असर इनकी कार्यशक्ति और स्वास्थ्य पर बहुत अच्छा पड़ा है।

गाय-बैल के गुण—इस जाति की गाय ७-८ सेर तक दूध देती है और बहुत अच्छी गाय तो १५-१६ सेर तक दूध देती है। लेखक के फार्म पर १८ सेर तक प्रति-दिन दूध देनेवाली हरियाना जाति की गायें थीं, जिन्होंने एक ब्यात मे ६००० से ७००० पौंड तक दूध दिया। पहले-पहल ये गाये लगभग ४।।-५ वर्ष में ब्याती है। जहां अच्छी प्रकार देख-भाल होती है और खाने का प्रबन्ध अच्छा होता है और गायों के रेवड के साथ सांड भी रहता है, वहां ये गाये हर साल एक बार ब्याती हैं। ये ८-९ महीने तक दूध देती हैं। इस जाति के बैल भारत के प्रसिद्ध बैलों

में गिने जाते हैं। इनकी खूबी यह है कि ये भारी, तेज और फुर्तीले, सभी कामों के लिए उपयोगी होते हैं। बैलों में दम भी खासा होता है। इस जाति के गाय और बैलों को यदि चरी का चारा और चने का दाना मिल जाय तो ये भारत की किसी भी जलवायु तथा धरती में पनप सकते हैं।

उन्नति के उपाय—हरियाना जाति के गाय-बैल ही नहीं, बल्कि सांड भी अपने गुणों के कारण बहुत अधिक संख्या में हरियाना-प्रदेश से बाहर भेजे जाते हैं। भारत में किसी भी जाति के पशु इतनी बड़ी संख्या में अपने निजी स्थान से बाहर नहीं जाते। हरियाना के पशुओं की अपनी इलाके से बाहर जाने की यदि यही हालत रही और इस इलाके में संगठित नसलोत्पत्ति और वंश-सुधार का कार्य नहीं हुआ तो यह नसल सिर्फ़ खराब ही नहीं, बल्कि सम्भवतः लुप्त भी हो जायगी। इस नसल के चुने हुए गाय और बैल दोनों में वांछित सभी गुण काफी ऊंचे दर्जे के विद्यमान हैं। इनके इलाके में जहां-जहां भी सुविधाएं हैं वहां यथाशीघ्र हरियाना जाति के चुने हुए पशुओं की पशुशालाएं कायम होनी चाहिए और और वहां बिना किसी बाहर के इलाके के पशुओं के संयोग के तथा समुचित चुनाव और छंटाव के आधार पर वंशोन्नति का कार्य होना चाहिए।

: ११ :

उत्तरप्रदेश के गाय-बैल

इस प्रदेश के उत्तर में हिमालय पर्वत, पश्चिम में पंजाब, राजस्थान, दक्षिण में मध्य-प्रदेश और पूर्व में बिहार स्थित है। यहां की भूमि दुमट से लेकर चिकनी तक होती है और काफी हिस्सों में पथरीली-रेतीली धरती भी है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी है। यहां गर्मियों में काफी गर्मी और सर्दियों में खासी सर्दी पड़ती है। इस प्रदेश के पश्चिम में वर्षा ३०-४० इंच के लगभग होती है। जैसे-जैसे पूर्व की ओर जाते हैं सर्दी कम तथा वर्षा और तरी अधिक होती जाती है। इस प्रदेश में गंगा, यमुना, गोमती, सरयू आदि बड़ी-बड़ी तथा अनेकों छोटी नदियां बहती हैं। उनके आसपास का इलाका खूब उपजाऊ है। हिमालय की तराई और मध्यप्रदेश से लगे हुए इलाके को जोड़कर यहां खेती खूब होती है। जहां अच्छी खेती होती है वहां पशुओं का डीलडौल और शरीर अपेक्षाकृत विकसित है और वे दूध देने और काम करने में भी कुछ अच्छे हैं।

उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग में तथा मथुरा के निकट ब्रजभूमि में और अन्य कुछ भागों में मेवाती और कहीं-कहीं हरियाना किस्म के पशु मिलते हैं। इनके अलावा पहाड़ी इलाके में पहाड़ी पशु और उनकी तराई में इस प्रदेश के मध्य भाग, पूर्व तथा दक्षिण में पहाड़ी, पोआर, खेरीगढ़ हरियाना, मेवाती केनवारिया और साहाबादी जाति के मिश्रित पशु मिलते हैं।

यहां के पशु खासा दूध देनेवाले, मजबूत, भारी बोझ खींचनेवाले तथा गहरी जुताई के लिए प्रसिद्ध हैं परन्तु ज्यों-ज्यों उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग से मध्य और पूर्वी भाग की ओर बढ़ते जाते हैं, उपर्युक्त जातियों के मिश्रित पशुओं के कद, डील-डौल तथा गुण कम होते जाते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत पहले वैष्णव-सम्प्रदाय के लोग काठियावाड़ से गिर जाति की गायें इधर लाये थे। उन गायों के साथ इस इलाके के हरियाना जाति के सांडों के संयोग से मेवाती पशुओं की उत्पत्ति हुई। इसके अतिरिक्त यहां जो प्रजनन-कार्य हुआ है, उसमें कोई खास सफलता नहीं मिली।

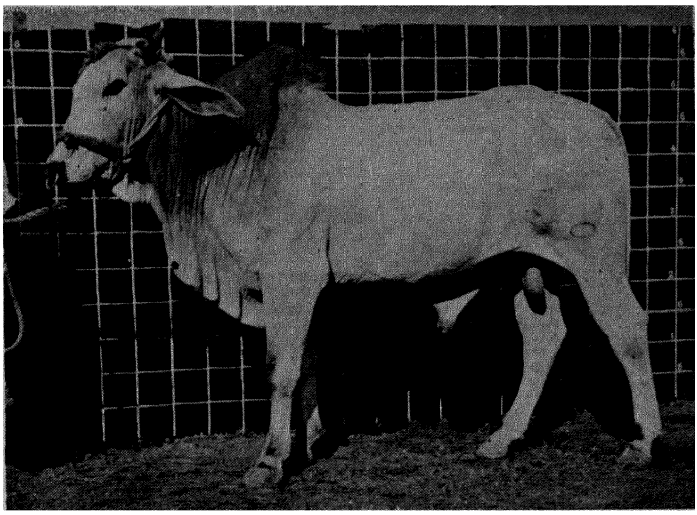
इस इलाके के निवासी अधिकतर शाकाहारी हैं और दूध, घी, छाछ आदि का उपयोग करते हैं। यहां पशुओं को चराई के अलावा घर में बांधकर भी खिलाने का रिवाज है। ये लोग गाय को धार्मिक भावना से और बैलों की उत्पत्ति के लिए और भैंस को दूध के लिए पालते हैं।

१. मेवाती

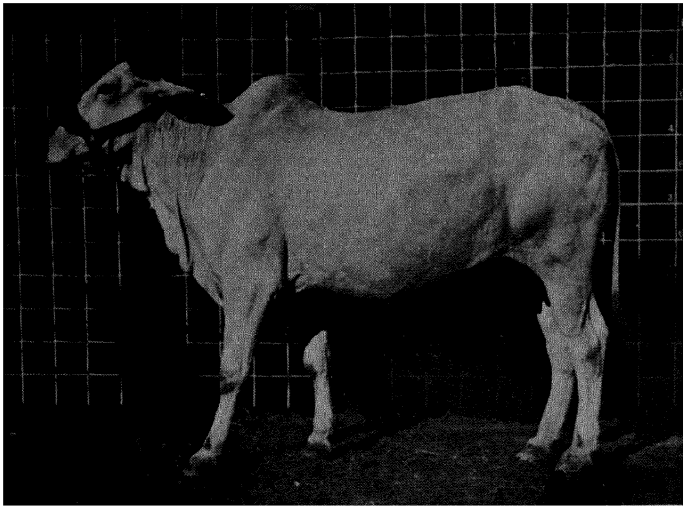
रहने का स्थान—ये अलवर और भरतपुर के आसपास के पूर्वी इलाके मेवात में और मथुरा जिला तथा संयुक्त-प्रान्त के पश्चिमी भाग में मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इन पशुओं में और हरियाना के पशुओं में विशेष अन्तर नहीं है। ऐसा प्रतीत होता है कि बहुत पहले किसी समय वैष्णव-सम्प्रदाय के लोग काठियावाड़ से गिर जाति की गायें इधर लाये थे। उन गायों के साथ इस इलाके के हरियाना जाति के सांडों के संयोग से मेवाती पशुओं की उत्पत्ति हुई। इस संयोग से यहां के पशुओं का दूध बढ़ गया। इसलिए उनकी संतति फैल गई परन्तु अब यहां के पशुओं पर गिर जाति के पशुओं का प्रभाव धीरे-धीरे कम होता जा रहा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डील-डौल में ज़रा ढीले, कद में ऊंचे और खूब लम्बे होते हैं इनमें गाय का वजन ८०० पौंड और बैल का ८००-८५० पौंड, सांड का ८५०-९०० पौंड होता है। इनका रंग सफेद और नर-पशुओं खासकर सांड का माथा, गर्दन, कन्धे, पिछला भाग और थुई भूरे रंग के होते हैं। किसी-किसी पशु में गिर जाति के पशुओं के रंग भी दिखाई दे जाते हैं। कमर सीधी परन्तु



मेवाती नसल का सांड



मेवाती नसल की गाय

थुई के पास ज़रा नीचे को हरियाना की तरह होती है। पेट दोनों तरफ खासा फैला हुआ और थोड़ा भारी होता है। छाती खासी चौड़ी और भारी होती है। सिर ज़रा उठा हुआ कम चौडा तथा ज़रा बाहर को निकला हुआ कुछ २ गिर जाति के पशुओ से मिलता-जुलता होता है। माथा चौड़ा होता है। सीग मजबूत और माथे से उठकर ऊपर को गोलाकार रूप मे होते हुए पीछे की ओर अन्दर को मुड़े हुए होते हैं। इनके सींग गिर और हरियाना जाति के पशुओं के बीच के समझने चाहिए। चेहरा लम्बा और भरवा होता है। आखें विशेष बड़ी और चैतन्य (चौकन्नी) नही होती। भौंह छोटी होती है। नाक खासी विकसित होती है। कान मंझले दर्जे के, घुमावदार और थोड़े लटकवा होते हैं। गर्दन मंझली से थोडी बड़ी और मजबूत होती है। गलकम्बल कुछ बड़ा और लटकवां होता है। थुई खासी विकसित होती है। कूल्हे चौड़े और भरवां होते हैं। ऐन काफी विकसित और थोड़े फैले हुए होते हैं और थन कम विकसित और बीच की जाति के होते हैं। पूछ छोटी, परन्तु काले बालों की गुच्छेदार होती है। मूतना बीच के दर्जे का लटकवां होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्रायः ३४° से ११६° फा० और वर्षा लगभग ३२ इंच प्रतिवर्ष होती है। जमुना नदी के खादर, कुछ गोचरों और पहाड़ी इलाकों को छोड़कर इस इलाके मे विशेष रूप से खेती होती है। यहां धरती रेतीली या रेतीली-दुमट पाई जाती है। यहा खनिज पदार्थों की स्थिति विशेष अच्छी नहीं है। परन्तु यहा पशुओं की खिलाई-पिलाई अच्छी होती है। कभी-कभी पशुओं को खल, दाना भी खुराक की कमी को पूरा करने के लिए दिया जाता है। इसलिए यहा के पशुओं का डील-डौल और शरीर खासा विकसित है और वे दूध देने और काम करने में अच्छे होते हैं।

गाय और बैल के गुण—यहां गायें प्रायः ६-७ सेर दूध देनेवाली होती हैं। अच्छी गाय १०-१२ सेर तक दूध देती है। ये हरियाना से कम

और नागौरी से अधिक दूध देती हैं। बैल बहुत मजबूत होते हैं। बैल भारी बोझा खींचने तथा गहरी जुताई के लिए प्रसिद्ध हैं, परन्तु चलने में उतने फुर्तीले नहीं होते, जितने हरियाना और नागौर जाति के बैल होते हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके में, खासकर पश्चिमी उत्तरप्रदेश में धीरे-धीरे दाने-चारे की कमी हो जाने और जन-संख्या बढ़ जाने के कारण और खेती की फसल अधिक बोने तथा उनपर अधिक महत्त्व देने की वजह से पशुओं के खराब होने का एक कुचक्र आरम्भ होगया है। दिन-पर-दिन पशु खराब होने आरम्भ होगये हैं। इस जाति के चुने हुए पशुओं के आधार पर नसलोन्नति करना आवश्यक प्रतीत होता है। गिर जाति के पशुओं से इन पशुओं का अधिक संयोग कराना ठीक नहीं मालूम देता। परन्तु पशु-विशेषज्ञों की राय से और उनकी देखभाल में यदि हरियाना के पशुओं से संयोग कराया जाय तो लाभ हो सकता है।

२. मध्यम हरियाना

रहने का स्थान—मध्यम हरियाना जाति के पशु वास्तव में निम्न हरियाना और मेवाती जाति के पशु हैं।

ज्यों-ज्यों गंगा और जमुना के दोआबे में पूर्व की ओर आगे बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों इनकी अवस्था अधिकाधिक बिगड़ी हुई मिलती है। खासकर के यमुना के पश्चिमी तट के इलाके के केनवारिया (केनकथा) जाति के पशुओं का जहां-जहां इनपर प्रभाव पड़ा है, वहां ये अधिक बिगड़े हुए मिलते हैं। इसी प्रकार गंगा के उत्तर-पूर्व के इलाके के पोआर और खेरीगढ़ पशुओं का जहां-जहां इनपर प्रभाव पड़ा है वहां-वहां ये अधिक बिगड़ गये हैं।

इनके रहने का स्थान पश्चिमी उत्तरप्रदेश में गंगा-यमुना का इलाका और पूर्व की ओर बिहार-प्रदेश की सीमा तक है।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये किसी मूल नसल के पशु नहीं हैं। ये पशु बिगडी हुई हरियाना और मेवाती जाति के हैं। ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर जाते हैं, त्यों-त्यों इनपर जलवायु का और उत्तरप्रदेश के पशुओं का खराब असर पडा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु आकार-प्रकार में हरियाना के पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। इनका डील-डौल, लम्बाई और कद हरियाना के पशुओं से छोटा होता है। उत्तरप्रदेश के पश्चिमी व मध्य भाग की गायों का वजन लगभग ६५०-७०० पौंड, बैल का ७००-७५० पौंड और साड का ७५०-८०० पौंड होता है। परन्तु इस भाग में आयात की हुई हरियाना जाति के पशु भी मिलते हैं। उनका वजन मूल पशुओ के अनुसार होता है। ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर जाते हैं, त्यों-त्यो मध्यम हरियाना पशुओ का वजन घटता जाता है। इनकी खाल और रोआं मूल पशुओं के अनुसार मध्यम दर्जे का होता है। इन पशुओं का रग-रूप तथा शरीर के अन्य अग मूल पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं।

जलवायु, भूमि तथा खान-पान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ३५° से ११६° फा० तक रहता है। इस इलाके में वर्षा ऋतु में ३०-४० इंच वर्षा होती है। यहां गोचर-क्षेत्र कम हैं। खेती खूब होती है, परन्तु यहां खनिज पदार्थों की कमी है। ज्यों-ज्यों पूर्व की ओर बढते जाते हैं, त्यों-त्यों खराब जलवायु मिलने और अधिक वर्षा होने के कारण इन पशुओं की व्यवस्था खराब होती गई है।

गाय और बैल के गुण—गाय ४-५ सेर तक दूध देनेवाली होती है। यह पहली बार ४-५ वर्ष मे ब्याती है, बाद मे १-२ वर्ष मे ब्याती है। बैल अपने डील-डौल और कद के अनुसार खासा काम करनेवाले होते हैं।

उन्नति के उपाय—इन्हें भर-पेट चारा और आवश्यक खनिज पदार्थ भरपूर मात्रा में खिलाना चाहिए, जिससे यहां जो खनिज पदार्थों की

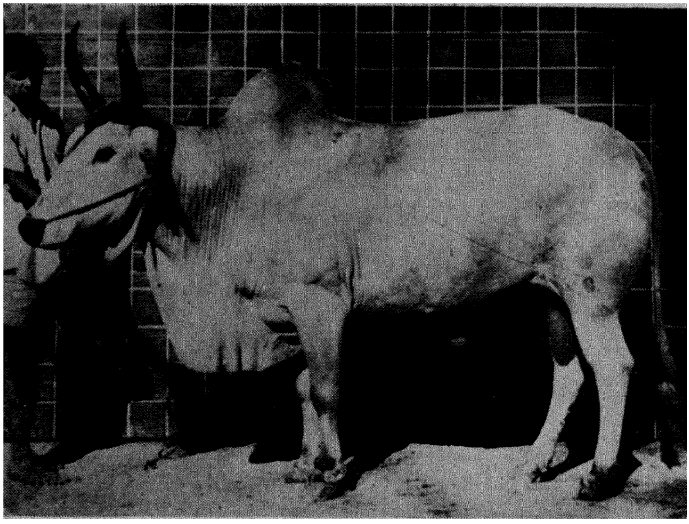
कमी है वह दूर हो सके और इनकी उन्नति हो सके। यदि इनके प्रजनन का कार्य समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से किया जाय तो इनमें काफ़ी उन्नति की गुंजाइश है। इसके अतिरिक्त पशु-विशेषज्ञों की राय से हरियाना, मेवाती और थारपारकर आदि किसी भी जाति के पशुओं से आवश्यकतानुसार संयोग कराया जा सकता है।

३. पोग्रार

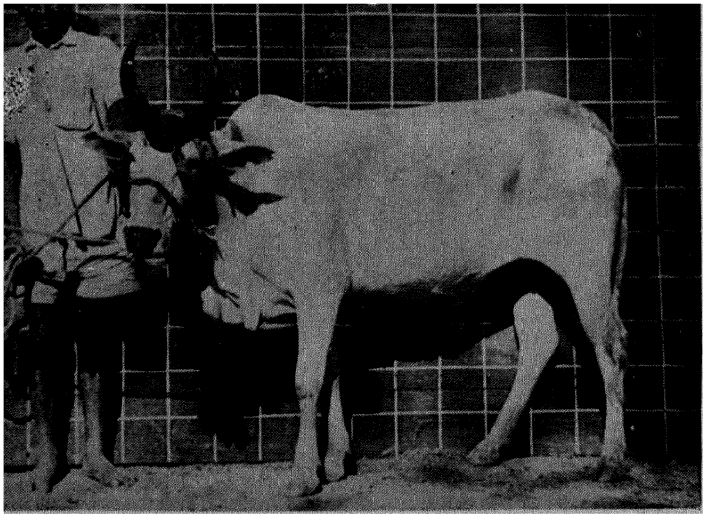
रहने का स्थान—ये पशु पीलीभीत जिले की पूरनपुर तहसील में, बरेली, मुरादाबाद जिलों के आसपास तथा उत्तरप्रदेश के खीरी जिले के उत्तर-पश्चिमी भाग में मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—पहाड़ी इलाके और खेरीगढ़ के पशुओं तथा उत्तरप्रदेश के पश्चिमी भाग के मंझले पशुओं के संयोग से इनकी उत्पत्ति हुई है। वहां की जलवायु और स्थिति के अनुकूल ही इनका विकास हुआ है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु छोटे कद के और मध्यम लम्बाई-चौड़ाई के होते हैं। इनमें गाय का वजन लगभग ६०० पौंड, बैल का ६००-६५० पौंड और सांड का ७००-७५० पौंड तक होता है। खाल और रोआं मध्यम दर्जे का होता है। इनका रंग चित-कबरा, सफेद, काला और कत्थई होता है। कमर सीधी, पेट दोनों तरफ खासा फैला हुआ और गहरा होता है। छाती मध्यम दर्जे की और माथा चौड़ा होता है। सींग ऊपर को उठते हुए दोनों तरफ बाहर की ओर फैलते हैं, फिर गोलाकार होकर ऊपर को उठते हुए पीछे को मुड़ जाते हैं। सिरे पर नोकीले और १-१। फुट लम्बे होते हैं। चेहरा लम्बा और भरवां होता है। आंख साधारण, नाक खासी विकसित और कान छोटे और खड़े होते हैं। गर्दन छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल मध्यम जाति का लटकवां होता है। थुई मध्यम दर्जे की और विकसित होती है। गायों की थुई ज़रा छोटी होती है। कूल्हे छोटे होते हैं। पूंछ



खेरीगढ़ का सांड



खेरीगढ़ की गाय

सफेद और काले बालों की, लम्बी और गुच्छेदार होती है। ऐन और थन छोटे तथा कम विकसित होते हैं। मूतना छोटा और शरीर से चिपका होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां प्राय: तापक्रम ३५° से ११४° फा० तक रहता है और प्रति-वर्ष ४० इंच के करीब वर्षा होती है। इस इलाके में वर्षा का पानी भूमि पर अक्सर काफी दिन तक रुका रहता है। इससे इन्हें बडा कष्ट होता है और भूखा रहना पड़ता है, क्योंकि वहां पशुओं को घर में बांधकर रखने का रिवाज नही है। यहां खेती साधारण होती है परन्तु घास खूब होती है। घास अधिक होने पर भी पशुओं को वर्षा-ऋतु में भरपेट खाने को नहीं मिलता। इसके अतिरिक्त यहां वांछित खनिज पदार्थों की भी कमी है। इसलिए इनका अस्थिपंजर छोटा रहता है और इनके शरीर की बढ़ोतरी भी नही हो पाती।

गाय और बैल के गुण—गाये इतना कम दूध देती हैं कि इन्हें अक्सर दुहा भी नही जाता। गाये प्रतिदिन १-२ सेर दूध देती हैं। यह पहली बार ४॥ वर्ष में ब्याती है, फिर १॥-२ वर्ष में ब्याती है। बैल शरीर के अनुपात मे खासा काम करनेवाले होते हैं। ये पशु चराई पर और स्वतन्त्र रहना पसन्द करते हैं एव फुर्तीले, भयानक और क्रोधी स्वभाव के होते हैं।

उन्नति के उपाय—समुचित छंटाव और चुनाव की प्रणाली के द्वारा ही इनसे मिलते-जुलते आसपास के इलाके के पशुओं के संयोग से इनकी वंशोन्नति करनी चाहिए। और इन्हे केवल चराई पर ही न रखकर घर पर पेट-भर खिलाना चाहिए। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञों की राय से छोटे कद के थारपारकर या मेवाती के चुनैता सांडों से संयोग कराकर इन पशुओं की उपयोगिता बढ़ाई जा सकती है।

४. खेरीगढ़

रहने का स्थान—ये पशु उत्तरप्रदेश में खेरीगढ़ जिले से लेकर

सरयू नदी के किनारे-किनारे आगे सरयू, गंगा के संगम तक पाये जाते हैं। इनको कहीं-कहीं भुर जाति के पशु भी कहते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इस जाति के पशु किसी प्रतिष्ठित नसल के पशु नहीं हैं। इनकी उत्पत्ति पहाड़ी और आसपास के इलाके के पशुओं के संयोग से हुई है। सरयू नदी के किनारे पर कुछ अच्छी घास मिल जाती है और फसल अच्छी होने के कारण चारा भी मिल जाता है। इसलिए ये पहाड़ और पोआर जाति के पशुओं के मुकाबले में कुछ अच्छे होते हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डील-डौल में छोटे कद के और कम लम्बे शरीर के होते हैं। ये बहुत हल्के शरीर के और कम वजन के होते हैं। गाय का वजन लगभग ६०० पौंड, बैल का ६५० पौंड और सांड का ७०० पौंड तक होता है। इनकी खाल मोटी और रोआं मंझली जाति का होता है। ये आमतौर से सफेद रंग के होते हैं, परन्तु चितकबरे, सफेद और काले रंग के भी पाये जाते हैं। कमर करीब-करीब सीधी होती है। पेट फैला हुआ और खासा विकसित होता है। छाती साधारण होती है। सिर मीड़ा, माथा ऊपर से कम चौड़ा परन्तु आंखों के पास अधिक चौड़ा होता है। सींग १-१॥ फुट लम्बे और पोआर जाति से मिलते-जुलते होते हैं। दूर से देखने में कांकरेज पशुओं के सींगों की तरह मुड़े हुए मालूम होते हैं। इनमें अन्तर इतना है कि खेरीगढ़ के पशुओं के सींग ज़रा पीछे को मुड़ जाते हैं और सिरे पर नोकीले होते हैं। चेहरा छोटा और भरवां होता है। आंख और नाक मध्यम दर्जे के होते हैं। कान मध्यम दर्जे के, खड़े होते हैं। गर्दन छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल छोटा और लटकवां होता है। कूल्हे छोटे होते हैं। ऐन बहुत कम विकसित होते हैं। थन भी छोटे होते हैं। पूंछ बीच की दर्जे की, गुच्छेदार, सफेद और काले बालोंवाली होती है। मूतना छोटा और थोड़ा खिंचा हुआ होता है।

ये पशु देखने में पोआर जाति के पशुओं से विशेष भिन्न प्रतीत नहीं

होते है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्राय: ३५° से ११२° तक रहता है और वर्षा करीब ४२ इच प्रतिवर्ष होती है। आमतौर से ये पशु सरयू नदी के किनारे और हिमालय की तराई के इलाके मे पाये जाते है। यहां वर्षा खूब होती है, परन्तु वांछित खनिज पदार्थों की यहां काफी कमी है। इस इलाके में पशुओं को घर पर खिलाने का कम रिवाज है। इसलिए ये पशु विशेष रूप से चराई पर निर्भर रहते है। झील के इलाके मे, और जहां वर्षा ऋतु में पानी रुकता है, इन्हे वर्षा ऋतु बहुत कष्ट से और भूखे रहकर बितानी पड़ती है। इनका अस्थि-पंजर और कद छोटा होता है एवं शरीर का विकास पूरी तरह नही हो पाता। इन्ही कारणों से ये दूध भी बहुत कम देते हैं।

गाय और बैल के गुण—दूध देने में ये पशु अच्छे नही समझे जाते। प्राय: सेर या दो सेर दूध देते है। कही-कही अच्छे पशु चार सेर तक भी दूध देते है। गाय चार या साढे चार वर्ष में पहली बार ब्याती है। इसके बाद सवा वर्ष से दो वर्ष में और कही-कही एक वर्ष में भी ब्याती है। बैल बिदकने वाले, तेज चलनेवाले और दमदार होते है। अपने इलाके मे इनकी अच्छी कदर होती है।

उन्नति के उपाय—इन पशुओं का संयोग कही-कहीं मध्यम हरियाना के पशुओं से कराया गया है, परन्तु इसका कोई खास अच्छा नतीजा नही निकला। अच्छा यही है कि इसी जाति के चुनैता पशुओं से समुचित चुनाव और छटाव करते हुए इनकी वंशोन्नति की जाय। इनकी उपयोगिता और खासकर दूध देने के गुण को बढाने के लिए यदि बाहर के पशुओं का अन्य जाति के पशुओं से संयोग कराना जरूरी हो तो पशु-विशेषज्ञों की राय से आसपास के इलाके के अधिक गुणवान, मिलते-जुलते पशुओं से संयोग कराया जाय, जिनमें अच्छे बैल और दूध देने वाली गाय के गुण हों। गंगातीरी (साहाबादी), छोटे कद के हरियाना और मेवाती जाति के पशुओं से संयोग कराया जा सकता है।

५. केनवारिया (केनकथा)

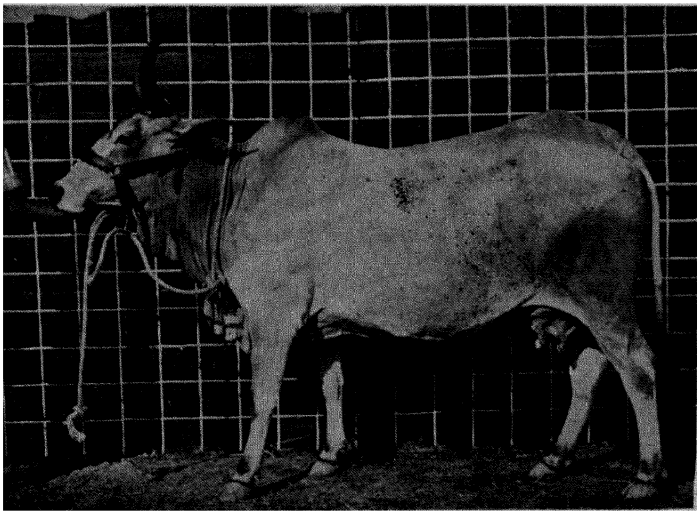
रहने का स्थान—ये पशु बुन्देलखण्ड की केन नदी के दोनों तरफ मिलते हैं और बांदा जिले से लेकर पन्ना, विजयगढ़, चरखारी, अजयगढ़ तक तथा जमुना के पश्चिमी इलाके में मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये किसी एक मूल नसल के पशु नहीं है। ये जहां मिलते हैं उस इलाके के आसपास के पशुओं के मिश्रण हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इनपर किसी समय पहाड़ी इलाके के पशुओं का विशेष प्रभाव पड़ा है। अपने इलाके की जलवायु, भूमि और खानपान के अनुसार इनका विकास हुआ है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल में छोटे कद और लम्बाई के होते हैं। गाय का वजन ५५०-६०० पौंड होता है, बैल का लगभग ६०० पौंड और सांड का ६००-६५० पौंड होता है। कहीं-कहीं इन पशुओं का वजन इससे भी कम होता है। इनकी खाल और रोआं मझली जाति का होता है। ये आमतौर से भूरे और गहरे कत्थई रंग के चितकबरे होते हैं। इनका पेट का हिस्सा अक्सर सफेद या भूरा होता है। कमर करीब-करीब सीधी होती है, परन्तु थुई के पास मामूली झुकी होती है। पेट डील-डौल की अपेक्षा खासा विकसित होता है। छाती साधारण, सिर छोटा और माथा चौड़ा और बीच में कुछ दबा हुआ होता है। सींग खेरीगढ़-जैसे, १-१॥ फुट तक लम्बे और मजबूत होते हैं। ये सिर से निकलकर शुरू में मोटे, बराबर में फैलते हुए ऊपर को उठकर पीछे को मुड़ते हैं और सिर पर नोकीले होते हैं। सामने और पीछे से देखने में इनके सींग कांकरेज नसल के पशुओं की भांति दिखाई देते हैं। चेहरा कम लम्बा और भरा हुआ तथा थोड़ा मोटा होता है। आंख मध्यम दर्जे की कुछ ढकी हुई-सी होती हैं। नाक साधारण, कान मामूली बड़े, पतले और खड़े होते हैं। गर्दन छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल डीलडौल के अनुसार बड़ा और लटकवां होता है। थुई खासी अच्छी विकसित होती है, परन्तु बहुत बड़ी नहीं



केनकथा (केनवरिया) नसल का सांड



केनकथा (केनवरिया) नसल की गाय

होती। कूल्हे छोटे होते हैं। ऐन बहुत कम विकसित होता है। थन भी बहुत छोटे होते है। पूछ मझले माप की, काले बालों की गुच्छेदार होती है। मूतना छोटा और लटकवां होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहा तापक्रम प्रायः ३५° से ११८° फा० तक रहता है। प्रायः ये पशु केन नदी के दोनों तरफ और जमुना नदी के पश्चिम की ओर पाये जाते हैं। इस इलाके में काफी वर्षा होती है। कही-कही तो ४० इंच के लगभग होती है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी है। यहां पशुओं के चरने के लिए काफी भूमि पड़ी है, जिसमें बढिया घास नही होती और खेती भी घटिया किस्म की होती है। भूमि दुमट से लेकर चिकनी तक मिलती है और काफी हिस्सों में पथरीली-रेतीली धरती भी है। इसलिए इनका अस्थिपजर और डीलडौल कम विकसित हुआ है। ये कद और शरीर में छोटे होते हैं तथा भरपूर खिलाई न होने के कारण दूध भी कम देते हैं।

गाय और बैल के गुण—दूध देने में ये पशु अच्छे नही होते। ये २-३ सेर के लगभग दूध देते हैं। बहुत अच्छे पशु ४-५ सेर दूध दे देते हैं। गाय पहली बार ४-५ वर्ष मे ब्याती है, बाद में १।-२ वर्ष बाद ब्याती है। बैल चलने मे विशेष फुर्तीले नहीं होते, परन्तु अपने इलाके में खेती और बैलगाडी खीचने के कार्य के लिए विख्यात हैं।

उन्नति के उपाय—इस इलाके की जलवायु, भूमि और खाना-पीना ही ऐसा है कि यहा जबतक पशुओं के खाने-पीने तथा खनिज पदार्थों की कमी को दूर न किया जाय, तबतक वे पनप नही सकते। इसलिए इन पशुओं का समुचित चुनाव और छटाव की प्रणाली से प्रजनन का कार्य होना चाहिए और साथ-ही-साथ उनकी देखभाल और खाने-पीने की अधिक-से-अधिक अच्छी व्यवस्था करनी चाहिए। विशेष उन्नति के लिए पशु-विशेषज्ञो की राय से छोटे कद के साहाबादी, हरियाना और मेवाती पशुओं से सयोग कराया जा सकता है।

: १२ :

बिहार के गाय-बैल

इस प्रदेश के उत्तर में नैपाल और हिमालय पर्वत, पश्चिम में उत्तर-प्रदेश तथा मध्यप्रदेश, दक्षिण में उड़ीसा तथा पूर्व में बंगाल स्थित है।

यहां की भूमि रेतीली, दुमट और चिकनी तथा कहीं-कहीं पथरीली है। प्रायः वांछित खनिज पदार्थों की कमी है। यहां उत्तरप्रदेश की अपेक्षा गर्मी और सर्दी कम तथा वर्षा अधिक होती है। इस इलाके में गंगा, सरयू, कोसी आदि प्रसिद्ध नदियां बहती हैं। इनके आसपास का इलाका बड़ा उपजाऊ है, जहां बहुत अच्छी खेती होती है। यहां कुछ हिस्सों में कुओं और नहरों द्वारा सिंचाई होती है। यहां प्रायः धान के पुआल और गेहूं के अलावा खिसारी, मटर, गेहूं, जौ, चना, अरहर का चारा और भूसा भी पशुओं को खिलाते हैं।

यहां बिहार के प्रसिद्ध साहाबादी पशुओं के अलावा इस प्रदेश के पश्चिम में गंगा के उत्तर और नैपाल की तराई तक उत्तरप्रदेश के पूर्वी और उत्तरी तराई के इलाके के सरयू नदी के पास के पशुओं के और साहाबादी पशुओं के संयोग से उत्पन्न मिश्रित पशु मिलते हैं। बिहार के पूर्वी भाग में बचौर और लाल पुरनिया जाति के पशुओं की कुछ अच्छी देखभाल होने के कारण उत्तरी भाग और तराई के पशुओं की अपेक्षा वहां कुछ अच्छे पशु मिलते हैं। बंगाल और आसाम में इनकी मांग खूब रहती है। ये पशु उत्तरी भाग के अन्य पशुओं की अपेक्षा खेती और बैलगाड़ी खींचने के काम में अच्छे होते हैं। पूर्व और दक्षिण के हजारी-बाग, मानभूम, सिंहभूम और पालामऊ की तरफ के पशुओं की हालत बहुत खराब है। वहां के बहुत-से भागों में भैंसों से खेती होती है। कहीं-कहीं तो गायों को भी हल में जोता जाता है। गाड़ियों में दो के बजाय

तीन बैल जोड़कर भारी बोझ खीचते हैं। मध्य बिहार में भी पशुओं की हालत उपर्युक्त वर्णन के अनुसार ही औसत दर्जे से कुछ अच्छी है।

पटना और इसके आसपास के इलाके मे एक शताब्दी पहले पटना के कमिश्नर ने आस्ट्रेलिया से कुछ साड मगाकर इस इलाके के पशुओं की उन्नति करने की चेष्टा की थी। उनकी संतति ने स्थानीय पशुओं की अपेक्षा अच्छा दूध दिया, परन्तु वहा की जनता ने इनकी नर-सतति पसन्द नही की। यहा कभी-कभी पशु-उन्नति का कार्य सरकारी फार्मों पर हुआ, परन्तु उससे यहा के पशुओ मे कोई सुधार नही हुआ है।

यहां के निवासी बहुत गरीब है। उनका मुख्य धन्धा खेतीबाडी ही है। बहुत घनी आबादी होने के कारण प्रत्येक कुटुम्ब के हिस्से में बहुत कम भूमि आती है। अपने ऊपरी खर्च निकालने के लिए, ये लोग पशुओं तथा खेती से प्राप्त पदार्थों को अपने काम मे लाने के बजाय, अक्सर बेच देते है। इसलिए इनकी कार्य-शक्ति बहुत कम होती है और ये लोग पशुओ की खिलाई-पिलाई तथा देखभाल भली प्रकार नही कर पाते। दोनों की हालत सुधारने के लिए यह आवश्यक है कि पशुओ का प्रजनन-कार्य और खिलाई-पिलाई इस माफिक हो कि यहा के निवासियों को तुरन्त लाभ हो सके। अतः यह आवश्यक है कि यहां खेती के उत्पादन-चक्र मे हरे चारे की फसले चालू की जाय और प्रजनन-कार्य अधिक दूध और अच्छे बैल प्राप्त करने की दृष्टि से किया जाय।

बिहार-प्रदेश के पशुओं को निम्नलिखत पाच भागों में विभाजित किया जाता है :

१. साहाबादी, २. बिहार के मध्य भाग के पशु, ३. उत्तर-पश्चिमी बिहार के सरयू और गंगा तथा नैपाल की तराई के बीच के इलाके के पशु। ४. बिहार के उत्तरी-पूर्वी इलाके के बचौर जाति के पशु, ५, बिहार के पूर्वी-पश्चिमी भाग के लालपुरनिया जाति के और पूर्वी-दक्षिणी भाग के पशु।

१. साहाबादी पशु

रहने का स्थान—साहाबाद के पशुओं को उत्तरप्रदेश में गंगातीरी पशुओं के नाम से भी पुकारा जाता है। ये पशु उत्तरप्रदेश के पूर्वी जिलों मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया और बिहार के साहाबाद (आरा), सारन (छपरा) और पटना के पश्चिमी भाग में गंगा और घाघरा के दोआबे में बहुतायत से पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु असल में मेवाती, हरियाना और गंगा-घाघरा के दोआबे के मूल पशुओं के मिश्रण हैं। साहाबाद के क्षेत्र में उत्तम खेती होती है और आबहवा अपेक्षाकृत खुश्क और पशुओं के पालन-पोषण के लिए अनुकूल है। यहां के लोगों की पशु-पालन में विशेष रुचि है। उन्होंने इन पशुओं की उन्नति के लिए मेवाती और हरियाना जाति के पशुओं के सम्मिश्रण का विशेष ध्यान रक्खा है और प्रजनन का कार्य समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से काफी अर्से तक बराबर किया है, इसलिए इन पशुओं की एक प्रकार की नसल बन गई है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु मंझले कद के लगभग ४-४½ फुट ऊंचे और अपेक्षाकृत लम्बे शरीर के होते हैं। इनमें गाय का वजन लगभग ६५० पौंड, बैल का ७०० पौंड और सांड का ७५० पौंड होता है। इनकी खाल अपेक्षाकृत पतली और रोआं छोटा होता है। इनका रंग अक्सर सफेद होता है, परन्तु कुछ पशुओं में खास-कर गर्दन, थुई, सिर, पुट्ठे, कूल्हे आदि का रंग भूरा होता है। कमर करीब-करीब सीधी होती है। पेट दोनों तरफ फैला हुआ और खासा भारी होता है। छाती बीच के दर्जे की, अच्छी विकसित होती है। सिर साधारण चौड़ा और बीच में ज़रा उठा हुआ होता है। माथा चौड़ा होता है। इनके सींग आरम्भ में मोटे होते हैं फिर माथे से उठकर ऊपर को गोलाकार रूप में उठते हुए अन्दर की ओर मुड़ जाते हैं और सिरे पर नोकीले नहीं होते। चेहरा लम्बा और भरवां होता है। आंख खासी विकसित और चेतन होती है। नाक साधारण होती है। कान मंझले

साइज के, कम खड़े होते हैं। गर्दन छोटी, साधारण मोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल मंझली जाति का लटकवां होता है। थुई बीच की जाति की खूब विकसित होती है। कूल्हे चौड़े और मजबूत होते हैं। ऐन और थन बीच की जाति के और विकसित होते है। पूछ मझली और काले बालों की गुच्छेदार होती है। मूतना बीच की जाति का और साधारण लटकवां होता है। ये पशु मेवाती और हरियाना पशुओं के प्रतिरूप और स्वभाव मे सहनशील और सीधे होते है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ३८° से ११२° फा० तक रहता है। इस इलाके की भूमि रेतीली, दुमट और कहीं-कहीं चिकनी होती है। बिहार के अन्य इलाकों की अपेक्षा यहां खनिज पदार्थों का अभाव कम है। वर्षा लगभग ४०-५० इच होती है। तापक्रम खेती और पशुपालन के अनुकूल होता है। इस इलाके मे वर्षा अधिक होने पर भी पानी कहीं नही रुकता और उसका शीघ्र ही निकास हो जाता है। खेती की सिंचाई काफी हिस्से में कुओं और नहरों द्वारा होती है, इसलिए यहा खेती साधारणतया अच्छी होती है। यहां ऐसी फसले भी बोई जाती हैं जिन्हें हरे चारे के रूप में पशुओं को खिलाया जाता है। इसके अलावा यहा खिसारी, मटर, गेहूं, जौ, चना और अरहर का भूसा भी पशुओं को खिलाते है तथा अधिक काम करने और खूब दूध देनेवाले पशुओं को खल, चना, मटर और खिसारी का दाना भी देते है। इसलिए पशु पनपे है और उनका विकास भी खासा हुआ है तथा अन्य इलाके के पशुओं की अपेक्षा ये दूध भी अधिक देते है।

गाय और बैल के गुण—गाय प्रायः ४-५ सेर दूध देती है। बहुत अच्छी गाय ७-८ सेर तक दूध देनेवाली होती है। यह पहले ४।।-५ वर्ष में ब्याती है। बाद में लगभग १।-१।। वर्ष मे ब्याती है। यहां के बैल बिहार और उत्तरप्रदेश में प्रसिद्ध है। खेती के काम में और गाड़ी खींचने में ये बैल बिहार में बहुत अच्छे समझे जाते है। यहां के बैल बहुत सीधे, अच्छे तथा काम करने में मजबूत और कुशल होते हैं।

उन्नति के उपाय—यहां के पशु एक नसल के पशु कहे जा सकते हैं। इस इलाके के आसपास के पशु इन पशुओं की अपेक्षा घटिया जाति के हैं। इसलिए इनके प्रजनन का का कार्य समुचित चुनाव और छंटाव द्वारा ही होना उचित है। फिर भी यदि अधिक उन्नति के लिए बाहर के पशुओं से संयोग कराने की आवश्यकता हो तो पशु-विशेषज्ञों की राय से हरियाना के पशुओं से संयोग कराया जा सकता है।

२. बिहार के मध्य भाग के पशु

रहने का स्थान—ये पशु पहले वर्णित इलाके को छोड़कर बिहार के मध्य के इलाके में गंगा के दोनों ओर पाये जाते हैं। ये आसपास के इलाके के मिश्रित पशु हैं। गंगा के उत्तरी भाग के पशु बचौर जाति के नाम से भी प्रसिद्ध हैं। वे प्रायः दरभंगा जिले के आसपास पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—इस इलाके में मिश्रित पशुओं के अतिरिक्त आवश्यकता पूरी करने के लिए बाहर से काफी पशु आयात किये गए हैं। पटना के कमिश्नर टेलर साहब ने आस्ट्रेलिया से सांड मंगाकर यहां छोड़े थे। उनकी संतति स्थानिक पशुओं से ड्यौढ़ा-दुगुना दूध देनेवाली है और यह अभीतक मिलती है। कई जगह पशुओं की उन्नति की दृष्टि से पशु-प्रजनन का कार्य भी हुआ है। परन्तु वह कार्य निश्चित लक्ष्य की दृष्टि से और विधिवत् न होने के कारण इस इलाके के पशु-समुदाय पर उसका कुछ अच्छा प्रभाव नहीं हुआ।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल, कद, वजन, रंग तथा अन्य शारीरिक बनावट में विशेष रूप से साहाबादी तथा अन्य आसपास के इलाके के पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। ये साहाबादी पशुओं को छोड़कर आसपास के इलाके के पशुओं की अपेक्षा कुछ अच्छे पशु होते हैं।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ३६° से ११३° फा० तक होता है और वर्षा लगभग ४६ इंच प्रतिवर्ष होती

है। यहां दुमट और चिकनी मिट्टी विशेष रूप से पाई जाती है। कहीं-कही रेतीली दुमट भी मिलती है। यहां वाछित खनिज पदार्थों की कमी है। वर्षा खूब होती है। इस इलाके में सिंचाई मुख्यतया नदियों, नहरों से ही होती है। यहां खेती खूब और खासी अच्छी होती है। गेहूं, अरहर, मसूर किसारी आदि द्विदल जाति की फसले भी बोई जाती है। कही-कही चारे की फसले भी बोना आरम्भ हुआ है। इसलिए साहाबाद के इलाके को छोडकर, इस इलाके मे चराई कम होने पर भी यहा के पशुओं की खिलाई-पिलाई बिहार के अन्य इलाके के पशुओं की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है। अतः पशुओं का अस्थिपंजर और डीलडौल का विकास भी, साहाबादी पशुओं को छोड़कर, अपेक्षाकृत अच्छा हुआ है और वे दूध भी कुछ अधिक देते है।

गाय और बैल के गुण—गाये कम दूध देनेवाली होती है। ये लगभग २-३ सेर दूर देती है। टेलर जाति की गाये ५-६ सेर दूध देती हैं। ये पहले लगभग ४-४।। वर्ष में ब्याती है। बाद मे १-१।। वर्ष मे ब्याती हैं। बैल अपने डील-डौल के अनुसार खासा काम करनेवाले होते है। टेलर जाति के बैल अच्छे नही समझे जाते, क्योकि उनकी थुई छोटी है और वे अन्य बैलों से सुस्त होते है। अन्य बैल काम करने मे साधारण होते है। अधिकतर साहाबादी बैल वहा से निर्यात किये जाते है।

उन्नति के उपाय—इनकी खिलाई-पिलाई की तरफ अधिक ध्यान देना और लगातार एक लक्ष्य से समुचित चुनाव और छंटाव द्वारा इनके प्रजनन का कार्य करना चाहिए। शीघ्र उन्नति के लिए बढिया साहाबादी चुनैता पशुओं का संयोग कराया जा सकता है। यदि पशु-विशेषज्ञों की राय हो तो लेखक की राय है कि हरियाना, मेवाती या थारपारकर, ग्वालो और निमारी जाति की अधिक दूध देनेवाली, छोटे कद की चुनैता गायों को इस इलाके में काफी सख्या में लाकर यहा के पशुओं से उनका संयोग कराया जाय और उनकी बढिया संतति से संयोग कराकर प्रजनन का कार्य किया जाय। यदि इसमें सफलता मिले तो उनकी संतति को

को तमाम प्रदेश में फैलाया जाय, तो सम्भव है, वांछित गुणोंवा पशुओं से यह इलाका किसी समय भरपूर हो जाय।

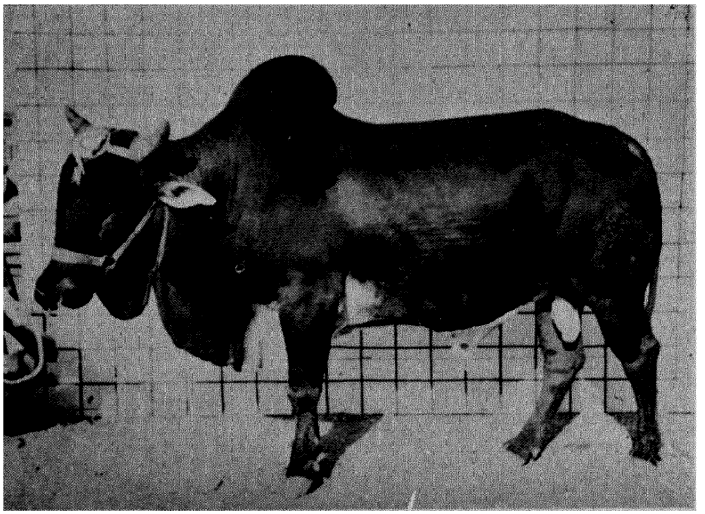
३. उत्तर-पश्चिमी बिहार के सरयू और गंगा तथा नैपाल की तराई के बीच के पशु

रहने का स्थान—इस इलाके में सीमा के आसपास के भाग में खेरीगढ़, गंगा और सरयू के बीच के पहाड़ी, साहाबादी और सीतामढ़ी के आसपास के बचौर जाति के पशुओं से प्रभावित अवर्णनीय (नान-डिस्क्रुप्ट) पशु मिलते हैं। इनके रहने का स्थान गंगा तथा नैपाल की तराई और पूर्व में गंडक नदी तक समझना चाहिए।

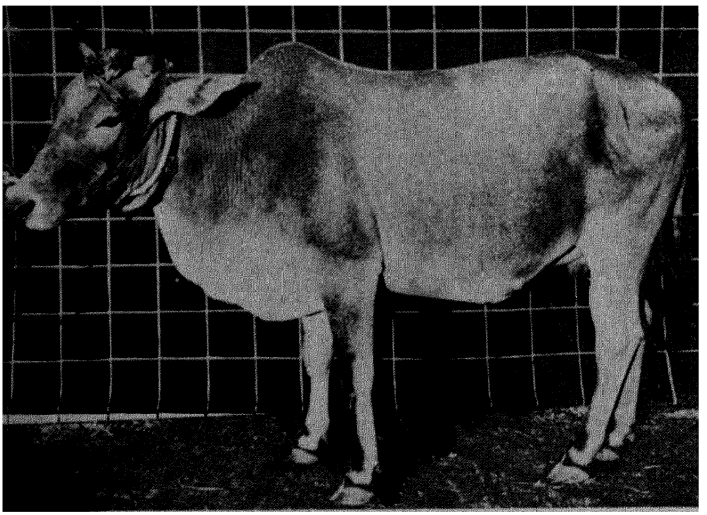
वंशोत्पत्ति का इतिहास—इस इलाके में अवर्णनीय (नान-डिस्क्रुप्ट) पशु होते हैं। यहां किसी मूल नसल या खास जाति के पशु नहीं होते। यहां अबतक अनिश्चित और बेढंगे तरीके से पशु-प्रजनन का कार्य हुआ है। इस कारण पशुओं में स्थायी गुण नही मिलते।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु छोटे कद के और मध्यम डीलडौल के होते हैं। इन पशुओं का वजन प्रायः ५००-५५० पौंड तक होता है। इनकी खाल और रोआं बीच के दर्जे का होता है। ये सफेद, भूरे और चितकबरे रंग के होते हैं। इनकी कमर, पेट, छाती, सिर, माथा और सींग प्रायः छोटे तथा चेहरा, आंख, नाक, कान, गर्दन, गलकम्बल थुई, कूल्हे, ऐन, थन, पूंछ और मूतना आसपास के पशुओं से प्रभावित और उनसे मिलता-जुलता होते हैं।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ३६ से ११३° फा० तक होता है। इस इलाके में वर्षा ५० इंच होती है। भूमि प्रायः दुमट और चिकनी है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी है, परन्तु खेती खूब होती है। यहां पर अपेक्षाकृत अधिक जनसंख्या होने के कारण भूमि पर मनुष्यों की खुराक और अनुपयोगी फसलों को पैदा करने का इतना भार है कि पशुओं को सिवाय उपर्युक्त फसलों के प्रायः



बचौर नसल का सांड



बचौर नसल की गाय

भूसे पर ही निर्भर करना पडता है। गोचर-भूमि कम है। पशु प्रायः आसपास की पडती धरती, खेतों के डौलों और बाग-बगीचों तथा ऊसर भूमि मे ही चर पाते हैं, इसलिए इनका अस्थिपंजर और डीलडौल विकसित नही हो पाया है और ये दूध भी बहुत कम देते हैं।

गाय और बैल के गुण—गाय बहुत कम दूध देती है। सामान्यतः १-२ सेर, और अच्छी गाये ३-३॥ सेर के लगभग दूध देती हैं। ये पहले ४-५ वर्ष में ब्याती हैं। बाद में लगभग १॥ वर्ष मे ब्याती हैं। बैल छोटे और मंझले कद के होते है और अपने मालिकों का काम मुश्किल से कर पाते हैं।

उन्नति के उपाय—खाने-पीने और वांछित खनिज पदार्थों को पूरा करने का समुचित प्रबन्ध होने से ही यहां के पशु अब की अपेक्षा अधिक उपयोगी हो सकते है। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञो की राय से बढिया चुनैता खेरीगढी, साहाबादी और डागी पशुओं का सयोग कराकर इन पशुओं की उन्नति की जा सकती है।

४. बिहार के उत्तरी-पूर्वी इलाके के बचौर जाति के पशु

रहने का स्थान—ये पशु नैपाल की तराई और गंगा के आसपास के दरभंगा जिले के पास के उत्तरी-पूर्वी बिहार में, खास करके सीतामढ़ी जिले और उसके उत्तरी-पूर्वी इलाके में मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु आसपास के इलाके तथा नैपाल के पशुओं से प्रभावित है। दरभगा के निकट बचौर परगना के आसपास के इलाके में इनकी उन्नति के लिए प्रजनन का कुछ कार्य हुआ है। वहां कुछ एक-से गुणवाले पशु मिलते है, जो बचौर जाति के पशु कहलाते हैं।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—इनका डीलडौल, कद, रंग-रूप और शारीरिक रचना आसपास के सफेद पशुओं के प्रतिरूप है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ३८° से ११०° फा० और वर्षा प्रति-वर्ष ५५ इंच तक होती है। खूब वर्षा

होती है। भूमि दुमट और चिकनी होती है तथा यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी है। इस इलाके में धान की खेती अधिक होती है। कोसी नदी के इलाके में वर्षा इतनी अधिक होती है कि पानी भर जाता है। पानी भर जाने के समय पशुओं को चारा बिलकुल नहीं मिलता और वे भूख से पीड़ित और रोगग्रस्त होकर बहुत दुःखी हो जाते हैं। प्रायः धान के पुआल और खेती की उपज के आनुषंगिकों पर ही निर्भर करते हैं। इसलिए इनका पूरा विकास भी नहीं हो पाता और ये दूध भी कम देते हैं।

गाय और बैल के गुण—गायें बहुत कम दूध देती हैं। ये लगभग १-२ सेर दूध देती हैं। पहली बार ४-५ वर्ष में ब्याती हैं, बाद में लगभग १॥ वर्ष में ब्याती हैं। इस इलाके के बैल खासे अच्छे काम करनेवाले और अच्छी तरह बोझा ढोनेवाले समझे जाते हैं।

उन्नति के उपाय—खाने-पीने और वांछित खनिज पदार्थों को पूरा करने का समुचित प्रबन्ध होने से ही यहां के पशु अब से अधिक उपयोगी हो सकते हैं। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञों की राय से बढ़िया चुनैता साहाबादी और डांगी जाति के पशुओं का संयोग कराकर इन पशुओं की उन्नति की जा सकती है। थारपारकर जाति की गायों को लाकर यहां के पशुओं से संयोग कराकर उनकी संतति की सहायता से यहां के पशुओं का प्रजनन् का कार्य करके देखा जा सकता है कि इस प्रयोग से यहां के पशुओं की कहां तक उन्नति होने की सम्भावना है।

५. बिहार के पूर्वी-दक्षिणी भाग के पशु

रहने का स्थान—ये पशु प्रायः बिहार के पूर्वी भाग, कोसी-इलाके के दक्षिणी भाग में मध्यप्रदेश से लगे हुए इलाके तक और हजारीबाग, मानभूम, सिंहभूम तथा पालामऊ के इलाकों में पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु आसपास के इलाके के अवर्णनीय (नान-डिस्क्रुप्ट) पशु हैं। यहां की जलवायु तथा खानपान के असर से

ये पशु बिगड गये हैं और इनकी उन्नति की तरफ अभी तक किसी ने ध्यान नही दिया है। परन्तु बिहार के लालपुरनिया के पशुओं की आसाम, बंगाल और उडीसा मे बहुत माग रहती है, क्योंकि ये काम करने में अच्छे होते है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल आदि में मध्यप्रदेश के अत्यधिक वर्षा के इलाके के, तराई के और धान के इलाके के पशुओं से मिलते-जुलते है, कद छोटा होता है। रग लाल, गेरुआ और चितकबरा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खान-पान का असर—यहा तापक्रम प्राय: ३८° से ११०° फा० तक और वर्षा प्रति-वर्ष ५५ इच समझनी चाहिए। यहां की भूमि रेतीली, पथरीली और दुमट तथा चिकनी मिट्टीवाली है। इसमें वांछित खनिज पदार्थों की काफी कमी है। यहा वर्षा खूब होती है, धान की खेती बहुतायत से होती है। यहां के पशु धान के भूसे, पुआल और खेतों के डोलों, अन्य स्थानो में तथा पहाडी भाग में जो चराई मिलती है, उसपर निर्वाह करते है। इसलिए यहा के पशुओं का अस्थिपजर और शरीर विकसित नही हो पाता।

गाय और बैल के गुण—गायें बहुत कम दूध देती है। बहुत कम दूध देने के कारण अक्सर उन्हें दुहा नही जाता। सम्भव है कि साधारण गाय औसत मे १ सेर भी दूध न देती हो। अच्छी गाय लगभग १-२ सेर तक दूध देती है। ये पहली बार लगभग ४ वर्ष मे, बाद में औसतन दो वर्ष मे ब्याती है। लालपुरनिया जाति को छोड़कर यहां के बैल भी कम-जोर और कम काम करनेवाले होते है। इसी कारण इस इलाके में काफी संख्या में भैंसे खेती का काम करते है। लेखक ने गाय और भैंसों को भी खेत जोतते देखा है। बैलों की कमी के कारण लोग गायों से भी हल चलाने का काम लेते है।

उन्नति के उपाय—खाने-पीने और वांछित खनिज पदार्थों को पूरा करने का समुचित प्रबन्ध होने से ही यहां के पशु अब से अधिक उपयोगी

हो सकते हैं। आवश्यकता होने पर पशु-विशेषज्ञों की राय से आसपास के बढ़िया चुनैता पशुओं का संयोग कराकर इन पशुओं की उन्नति की जानी चाहिए। विशेष उन्नति के लिए छोटे कद के साहाबादी या डांगी पशुओं का संयोग कराया जा सकता है।

: १३ :

बंगाल के गाय-बैल

पशुओं के विवरण की दृष्टि से बंगाल को निम्नलिखित तीन भागों में बांट सकते हैं :

१. सिक्किम और भूटान के दक्षिण में, असम के पश्चिम में और पूर्वी पाकिस्तान के उत्तर में तथा बिहार से लगा हुआ इलाका, जिसमें दार्जिलिंग, जलपाईगुरी और कूचबिहार के जिले सम्मिलित समझने चाहिए।

२. पश्चिम में पूर्निया, भागलपुर, संथाल परगने से लगा हुआ और पूर्वी पाकिस्तान के बीच का गंगा के दोनों पार का भाग जिसमें माल्दा, मुर्शिदाबाद, वीरभूमि, नदिया और बर्दवान के उत्तर तक के इलाके सम्मिलित समझने चाहिए।

३. बिहार के पूर्व, बिहार और उड़ीसा के मयूरभंज जिले के पूर्व, बर्दवान के दक्षिण और पूर्वी पाकिस्तान के पश्चिम और दक्षिण में समुद्र तक चौबीस परगने तक का इलाका, जिसमें बर्दवान से लेकर बाकुरा, मेदिनापुर, चौबीस परगना, जैसोर और नदिया का पश्चिमी हिस्सा समझना चाहिए।

यहां प्रायः चिकनी दुमट तथा पहाड़ी इलाके के कुछ भाग में पथरीली भूमि मिलती है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की काफी कमी है। इस इलाके में गर्मी कम और पहाड़ी इलाके को छोड़कर सर्दी भी कम तथा वर्षा अधिक होती है। यहां तमाम इलाके में तरी अधिक रहती है। कुछ हिस्से को छोड़कर गोचर-भूमि कम है। घनी बस्ती होने के कारण भूमि पर इतना दबाव है कि प्रति-मनुष्य हिस्से में बहुत कम भूमि आती है।

लोग प्रायः खेती पर ही निर्वाह करते हैं। यहां मुख्यतया धान की खेती होती है। इसके अलावा गेहूं, अरहर तथा अन्य दालें, ईख, पाट (जूट) और तिलहन की उपज होती है। पशुओं के लिए चारा अलग बोने का रिवाज नहीं है और न ही पशुओं को चारे के अतिरिक्त खल-दाना आदि देते हैं। इसलिए पशु प्रायः धान के पुआल तथा अन्य भूसे, घास आदि पर निर्भर करते हैं। इस कारण वे काफी कमजोर होते हैं और पूरे विकसित नहीं होते। पशुओं के कम उपयोगी होने के कारण और यहां के निवासियों का खेती और दूध पर निर्भर करने के कारण पशुओं की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जाती है और उनकी उपयोगिता घटती जाती है। इस प्रकार पशुओं के पतन का एक कुचक्र स्थापित हो गया है।

पश्चिमी बंगाल के पशुओं को संक्षेप में तीन प्रकार के पशुओं में विभाजित किया जा सकता है:

१. जंगली और पहाड़ी पशु। २. मैदान के पशु। ३. बंगाल में बाहर से आये हुए पशु।

उपर्युक्त पहले भाग के इलाके में प्रायः जंगली और पहाड़ी पशु, दूसरे में मैदान के स्थानिक मूल पशु और उनके बराबर बिहार के इलाके में पशुओं का सम्मिश्रण और तीसरे में वहां के स्थानिक मूल पशुओं के और बराबर के बिहार के इलाके के पशुओं का सम्मिश्रण तथा बंगाल में बिहार के इलाके से आये हुए पशु मिलते हैं, जो प्रायः बड़े कस्बों, जमींदारों के यहां और डेरी फार्म और केटिल फार्म तथा बड़े शहरों में पाये जाते हैं।

इस प्रदेश में सिवाय श्री जाति के और आयात किये हुए पशुओं के तमाम प्रदेश में मिलनेवाले पशु बहुत कम दूध देते है। यहां के बैल भी छोटे कद के कमजोर होते हैं। वे ज्यों-त्यों करके अच्छे बैलों के अभाव में खेती और बैलगाड़ी खींचने का काम करते हैं।

कई बार अनेक स्थानों में पशुओं की उन्नति का कार्य आरम्भ किया गया। सरकारी फार्मों पर भी पशुओं की उन्नति का कार्य हुआ। स्थानिक

मूल पशुओं का बिहार, उत्तरप्रदेश तथा पंजाब के हरियाना और साहीवाल और करांची के निकट के सिंधी तथा थारपारकर इत्यादि कुछ पशुओं से और हिन्दुस्तान के बाहर की एयरशायर नसल के और आस्ट्रेलियाई सांड आयात करके इनसे संयोग कराकर इन पशुओं की उन्नति करने का प्रयत्न किया गया; परन्तु इस कार्य में कोई खास सफलता नहीं मिली। आरम्भ में पहली पीढ़ी में स्थानिक पशुओं में दूध और डीलडौल भी उन्नत हुआ, परन्तु दूसरी पीढ़ी में यह स्थिति कायम नहीं रह सकी। तीसरी और बाद की पीढ़ी में हालत और भी खराब होगई और वे बंगाल की विपरीत जलवायु, स्थितियों तथा वातावरण में पनप न सके। इसलिए ये सब प्रयोग करीब-करीब असफल ही रहे। अब भी वहां करांची के निकट मिलनेवाले थारपारकर जाति के पशुओं से संयोग कराकर स्थानिक पशुओं की उन्नति करने का प्रयोग किया जा रहा है।

बंगाल के पशुओं की उन्नति के उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि स्वर्गीय कर्नल मौरगन, इन्सपेक्टर-जनरल ऑफ दी वैटर्नरी डिपार्टमेण्ट ने यह ठीक ही राय दी थी—"भारत के एक भाग के पशु दूसरे भिन्न स्थिति के क्षेत्र में जाकर नहीं पनपेंगे। किसी खास नसल के सांडों को उसके इलाके से बाहर दूसरे भागों में पशु-उन्नति की दृष्टि से ले जाना घातक होता है। इस प्रकार पशुओं की उन्नति करने के प्रयोगों और प्रयत्नों को रोक देना चाहिए। हमारा ध्येय दूसरे इलाके के भिन्न जलवायु और वातावरण में रहनेवाले बिल्कुल भिन्न और बेमेल जाति या नसल के पशुओं से बिना संयोग कराये स्थानिक मूल पशुओं की उन्नति करने का होना चाहिए। इसके विपरीत करने से स्थायी उन्नति होने की कोई सम्भावना नहीं है। इसलिए यथासम्भव समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से ही स्थानिक मूल पशुओं की उन्नति करना ठीक है। यदि कहीं इस प्रणाली से वांछित फल प्राप्त न हो तो शीघ्र उन्नति करने के लिए मिलती-जुलती जलवायु और अन्य पशु-पालन की अनुकूल स्थितियों के इलाकों के ऐसे पशुओं से, जो कद और डीलडौल में मिलते-

जुलते हों तथा जिनमें वांछित गुणों-वाली सन्तान पैदा करने की शक्ति भरपूर हो, संयोग कराकर प्रजनन-कार्य किया जा सकता है। यह प्रणाली कम खतरनाक है।"

यहां के निवासी बहुत गरीब हैं। बस्ती घनी होने के कारण खेती से भरपूर आमदनी नहीं हो पाती। पशु-पालन की स्थिति भी प्रतिकूल है, इसलिए इससे भी उन्हें पर्याप्त आमदनी नहीं होती। इस कुचक्र को दूर करने के लिए सिवा इसके कोई उपाय नहीं मालूम देता कि वहां आजकल जो भी उत्पादन होता है उसके बीच मे अधिकाधिक चारे की खेती आरम्भ की जाय और स्वर्गीय कर्नल मोरगन द्वारा सुझाये गए तरीके से पशु-प्रजनन का कार्य करके पशुओं को अधिक उपयोगी बनाया जाय, ताकि उनकी मदद से पशुओ और खेती दोनों से आमदनी बढ़ सके।

आगे इस प्रदेश में पाई जानेवाली अन्य विभिन्न जातियों का परिचय दिया जाता है।

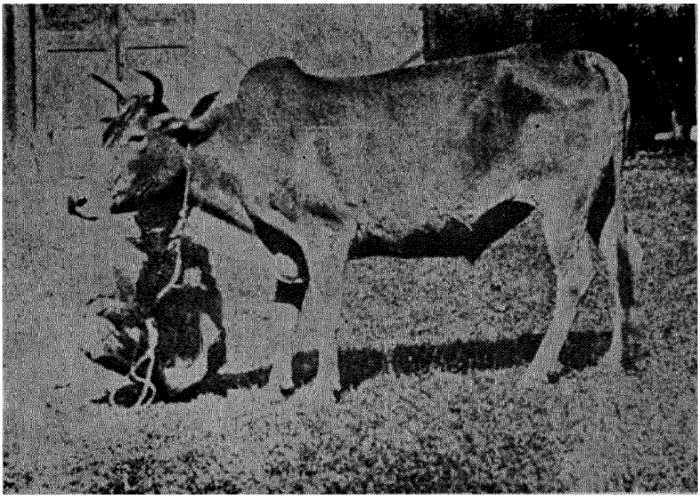
१. बंगाल के जंगली और पहाड़ी पशु

रहने का स्थान—जंगली पशुओं में याक या चंवरी जाति के पशु थोड़ी संख्या में दार्जीलिंग के उत्तरी बर्फ़ीले भाग के जंगलों में मिलते हैं। ये पहाड़ों के बर्फीले इलाके में बोझ खींचने और कहीं-कहीं दूध के उपयोग में आते हैं अन्यथा ये जंगलों में स्वतन्त्र रूप से फिरते हैं।

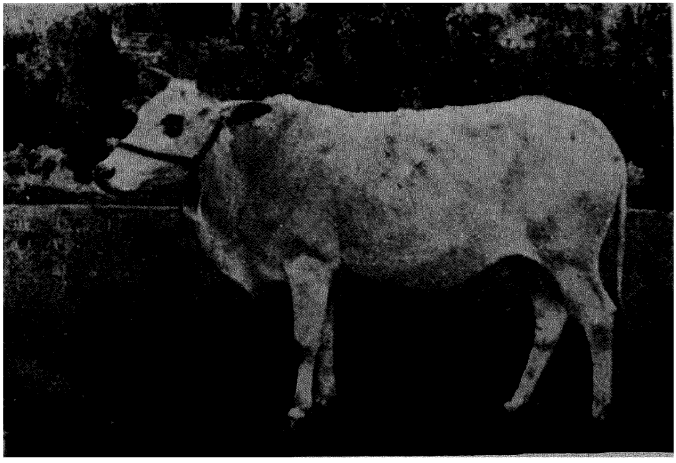
पहाड़ी पशुओं में गौर पशु हिमालय की तराई में, ग्याल अथवा मिथुन पशु इस इलाके के उत्तरी-पूर्वी भाग से ब्रह्मपुत्र के पूर्वी इलाके तक, नेपाली पशु नेपाल से सटे हुए तटवर्ती इलाके में और श्री पशु सिक्किम और भूटान के तटवर्ती तथा दार्जीलिंग के इलाके में मिलते हैं।

(क) गौर

रहने का स्थान—ये पशु बंगाल से लगे हुए हिमालय की तराई के इलाके में मिलते हैं।



बंगला नसल का सांड



बंगला नसल की टिपिकल गाय

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु इस इलाके के मूल पशुओं मे से हैं। इनको पालने और इनकी उन्नति करने का कभी कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—गीर पशुओं की कुछ विशेष प्रकार की आकृति होती है। इस कारण ये दूसरे पशुओं में फौरन पहचाने जा सकते हैं। बैल अपेक्षाकृत डील-डौल में बहुत बड़े, लम्बे कद के और मजबूत होते है। इनका माथा कुछ अन्दर को दबा हुआ या गहरा होता है, तथा इनके भूरे रंग के बाल बाहर को निकले रहते हैं। इन बालों में और इनके शरीर तथा सिर के बालों मे काफी अन्तर होता है। इनके सीगों के बीच का भाग उठा हुआ होता है। सींग आरम्भ में मोटे और दोनों तरफ फैलते हुए आगे को मुडते हुए ये सिरे पर नोकीले होते है। यदि पीछे से देखा जाय तो ये गोलाकार जैसे दिखाई पड़ते है। नाप मे ये छोटे होते है। इनकी टागों के नीचे का भाग सफेद होता है और इनकी पूछ अपेक्षाकृत छोटी होती है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः २०° से ८८° फा० और वर्षा करीब ११० इंच होती है। यहां पहाडी इलाके की जलवायु के कारण अधिक सर्दी और बहुत अधिक वर्षा होती है। इस कारण यहा अधिक नमी और कम गर्मी होती है। पशुओं को चराई अधिक मिलती है और ऊपर से खाने के लिए कम मिल पाता है, क्योंकि यहां खेती कम होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पहाडी हिस्से में वाछित खनिज पदार्थों की विशेष कमी नही है। इसलिए पशुओं का डील-डौल और विकास खासा होता है।

गाय और बैल के गुण—गाय बहुत कम दूध देती है। बहुत कम दूध देने के कारण इन्हे अक्सर दुहा भी नही जाता। बैल गाय की अपेक्षा अधिक साहसी और अच्छा काम करनेवाले होते हैं।

उन्नति के उपाय—बंगाल के पहाड़ी इलाके में जो भी पशु मिलते हैं उनमें सबसे बढ़िया श्री नसल के पशु हैं। इनकी गाय इस इलाके की

दृष्टि से बहुत दूध देती है और बैल अपेक्षाकृत अधिक काम करनेवाले होते हैं। यहां के पशुओं की उन्नति की तरफ अभीतक कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। बंगाल के पहाड़ी इलाके में केवल एक उदाहरण नेपाली पशुओं का मिलता है। श्री नसल के सांडों से संयोग कराकर इनकी उन्नति का प्रयत्न किया गया है और इसमें कुछ सफलता भी मिली है। यह बात ठीक ही मालूम देती है। अतः इस इलाके के पशुओं की उन्नति समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली द्वारा करना ही ठीक मालूम देता है। जहां आवश्यक हो, एक-से कद के, मिलती जुलती आकृति वाले श्री पशुओं से संयोग कराकर इनकी उन्नति की जा सकती है।

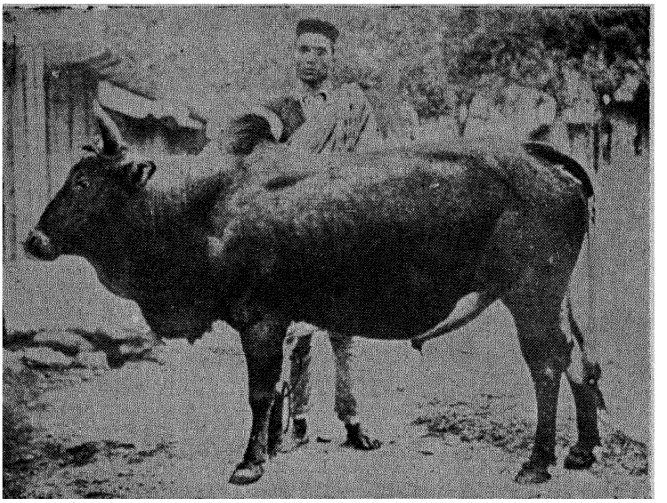
(ख) ग्याल

रहने का स्थान—बंगाल के जंगल इनकी स्थिति के अनुकूल हैं। ये पशु नागा पहाड़ियों में और अबोर के इलाके में बहुतायत से पाये जाते हैं।

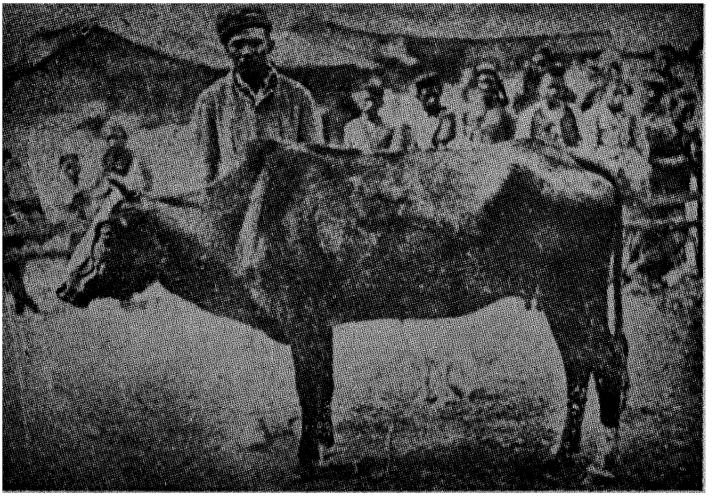
वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु इस इलाके के मूल पशुओं में से हैं। इनको पालने और इनकी उन्नति करने का कभी कोई विशेष प्रयत्न नहीं किया गया।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु आमतौर से गौर पशुओं से छोटे होते हैं। कद में ४-४॥ फुट तक ऊंचे होते हैं। इनका रंग मटियाला और काला होता है, टांगों के नीचे का हिस्सा सफेद होता है। इनकी झालर चौड़ी और बड़ी होती है। इनके थुई नहीं होती। यह इनकी आकृति की एक विशेषता है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहां तापक्रम ३०° से ९०° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष करीब १०० इंच होती है। यह पहाड़ी और तराई का इलाका है, इसलिए पहाड़ी इलाके की अपेक्षा यहां सर्दी कम है और गर्मी थोड़ी अधिक रहती है। यहां पशुओं को चराई मिल



नेपाली नसल का सांड



नेपाली नसल की गाय

जाती है। खेती अपेक्षाकृत यहां अधिक होती है, इस कारण अतिरिक्त चारा, भूसा आदि भी मिलता है। परन्तु यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी है। अत्यधिक वर्षा होने से घाटी के मैदानी इलाके में पानी भर जाता है। इस कारण से वर्षा ऋतु में पशु कमजोर हो जाते हैं और इनके अस्थिपंजर तथा डीलडौल का विकास भी कम हो पाता है।

गाय और बैल के गुण—गाय ३-४ तक सेर दूध देती है। इनके दूध में बहुत मक्खन होता है। बैल मजबूत और खेती का काम करने और गाड़ी खींचने में अच्छे होते हैं।

उन्नति के उपाय—बंगाल के पहाड़ी इलाके में ये पशु छोटे कद वाले होते हुए भी अपेक्षाकृत दूध देने, खेती करने, बोझ ढोने आदि के कार्य में अधिक उपयोगी है। आसपास के इलाके के पशु, जो इनसे अधिक उपयोगी हैं, इनसे कद और डीलडौल मे अपेक्षाकृत काफी बड़े होते हैं। इसलिए यही उचित मालूम देता है कि इनकी उन्नति के लिए समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली द्वारा ही प्रजनन का कार्य किया जाय। फिर भी यदि आवश्यकता हो तो पशु-विशेषज्ञों की राय से श्री नसल की छोटे कद की गायों से ग्याल जाति की अच्छी चुनैता, अधिक दूध देने वाली गायों की नर-सन्तति (सांड) से सयोग कराकर उनकी अधिक गुण रखनेवाली वर्ण-संकर सन्तान से प्रजनन का कार्य किया जाय। ऐसा करने से सम्भव है इन पशुओं की अधिक उन्नति हो सके।

(ग) नेपाली पशु

रहने का स्थान—ये पशु नैपाल से सटे हुए बंगाल प्रदेश के तट-वर्ती पहाडी इलाके में पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पशु बंगाल और नेपाल प्रदेश के सीमा-वर्ती इलाके में मिलते हैं। यह कहना भी कठिन है कि बगाल से लगे हुए नेपाल के इलाके में जो पशु मिलते है वे किसी विशेष नसल के हैं। सम्भव है वे बिहार के पूर्वी जिले के मुरंग जाति के पशुओं से प्रभावित

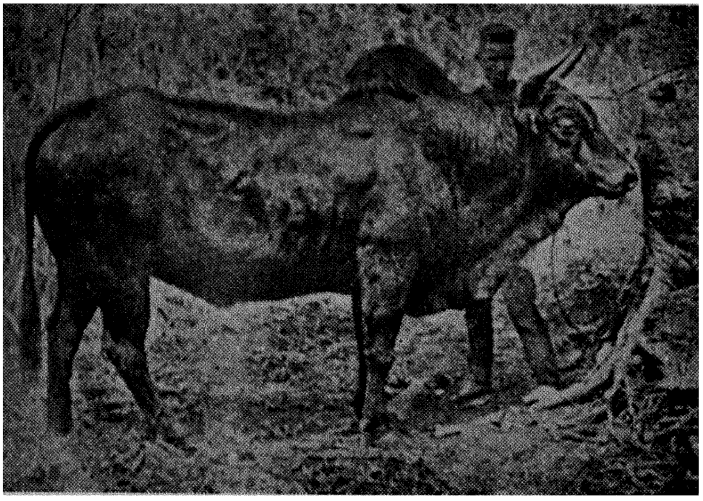
हों। इसलिए इन पशुओं की वंशोत्पत्ति के विषय में निश्चयपूर्वक कुछ भी नहीं कहा जा सकता, सिवाय इसके, कि इनके गुण इनमें काफी हद तक कायम होगये हैं। इस इलाके के कुछ पशुओं का संयोग श्री नसल के पशुओं से हुआ है। इसके फलस्वरूप इस इलाके के पशुओं की कुछ उन्नति हुई है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल में हल्के और छोटे कद के लगभग ४०-४५ इंच ऊंचे या इससे भी छोटे होते हैं। इनका रंग गहरा गेरुआ और काला जैसा होता है। इन पशुओं के सींग दोनों तरफ फैलते हुए ऊपर को अर्द्ध गोलाकार रूप में उठते हैं और सिरे पर पतले होते हैं। इनका गलकम्बल लटकवां होता है। थुई बहुत छोटी और कम विकसित होती है। इनके थन बहुत छोटे होते हैं।

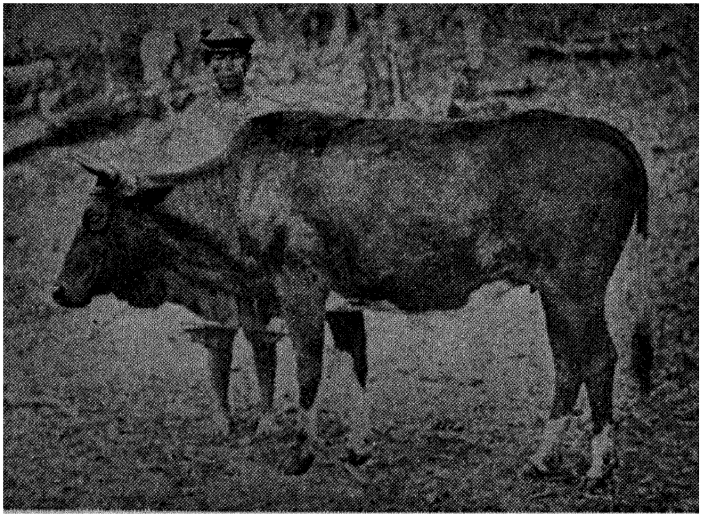
जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहां तापक्रम ३०° से ९०° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष करीब १०० इंच होती है। ये पशु पहाड़ी इलाके में पाये जाते हैं और प्रायः चराई पर ही रहते हैं। यहां खेती कम होती है। क्योंकि चराई के अलावा इन्हें खाने को विशेष नहीं मिलता, इसलिए ये पशु छोटे कद के होते हैं। परन्तु कद की दृष्टि से दूध देने और काम करने में अच्छे होते हैं।

गाय और बैल के गुण—गायें लगभग दो सेर दूध देती हैं। बैल बड़े मजबूत और खूब काम करनेवाले होते हैं। अपने गुणों के कारण ये गरीबों के पशु कहलाते हैं। इनकी विशेषता यह है कि ये पहाड़ों पर बड़ी फुर्ती से चढ़ जाते हैं।

इन पशुओं की उपयोगिता बढ़ाने के लिए श्री जाति के सांडों से इनका संयोग कराया गया है और इसमें कुछ सफलता भी मिली है। इनके मिश्रण को श्री-कुटया नसल के पशु कहते हैं। पशु-विशेषज्ञों की राय से समुचित चुनाव और छंटाव के साथ यदि श्री नसल की छोटे कद की गायों के साथ इस जाति के बड़े कद की और अधिक दूध देने-वाली गायों की नरसंतति (सांडों) से संयोग कराकर प्रजनन का कार्य



श्री नसल का सांड



श्री नसल की गाय

किया जाय तो विशेष सफलता की संभावना है।

(घ) श्री

रहने का स्थान—ये पशु बंगाल में पहाडी इलाके, सिक्किम और भूटान के तटवर्ती इलाके तथा दार्जीलिंग के इलाके मे मिलते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये पहाडी इलाके में पाये जानेवाले एक मूल नसल के पशु है और अपनी-जैसी अपने गुणोंवाली संतान पैदा करते है। ये अपने इलाके के बाहर नही पनपते। जहा-जहां इस जाति के सांडों को इस इलाके से बाहर ले जाकर वहां के पशुओ से सयोग कराया गया है उसमे सफलता नही मिली। इस वश के पशुओं के सम्बन्ध में उपर्युक्त बातो के अलावा और कुछ जानकारी अभी तक प्राप्त नहीं हो हो सकी है। इनके थुई नाममात्र को होती है। इससे ऐसा विदित होता होता है कि ग्याल जाति के या बिना थुईवाले विदेशी पशुओं से इनका कुछ सम्बन्ध रहा है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु डीलडौल मे भारी और गठीले बदन के और कद मे ४-४।। फुट तक के होते है।

इनके शरीर पर गहरे और मोटे बाल होते हैं। जाड़ों में इनके बाल बहुत घनेरे हो जाते है। इनका रग काला-सफेद और गहरा कत्थई-सफेद होता है। इनकी पीठ समतल होती है। सिर छोटा, चौकोर और सुडौल होता है। माथा चौडा और चपटा होता है। इनके सींग चिकने और काले होते है। ये आरम्भ में मोटे होते है और दोनों तरफ फैलते और मुडते हुए फिर ऊपर को अर्द्ध गोलाकार रूप में ज्यों-ज्यों उठते हैं त्यों-त्यों पतले होते जाते है। ये सिरे पर नोकीले होते हैं। इनके कान छोटे होते हैं। गर्दन भारी तथा भरी हुई होती है। इनकी थुई बहुत छोटी और कम विकसित होती है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां तापक्रम प्राय: २५° से ९०° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष करीब १२० इंच होती है। यहां की

जलवायु और वर्षा पहाड़ी इलाके जैसी है। यहां के पशुओं को चराई खूब मिलती है। यहां खेती भी होती है। इस कारण इन्हें ऊपर से भी खाने के लिए मिल जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस पहाड़ी हिस्से में वांछित खनिज पदार्थों की विशेष कमी नहीं है। इसलिए पशुओं का डीलडौल और विकास खासा होता है और वे दूध भी काफी देते हैं।

गाय और बैल के गुण—इस जाति के पशु इस इलाके में और भारत के सभी पहाड़ी इलाकों में सबसे बढ़िया पशु होते हैं। गाये दूध देने में खासी अच्छी होती हैं। ये प्रायः प्रतिदिन ४-५ सेर दूध देती हैं। बहुत अच्छी गायें ८-९ सेर तक भी दूध देती हैं। इनके दूध में मक्खन का अंश बहुत होता है। बैल इस इलाके में बहुत बोझ खींचनेवाले, मजबूत और अन्य काम करने में बहुत बढ़िया समझे जाते है। इनकी खूब मांग रहती है। ये पशु पहाड़ी, अधिक वर्षा वाले, तरी वाले और मच्छर इत्यादि के इलाके में भी भली प्रकार पनपते है। इसलिए इन्हें भारत के पहाड़ी इलाके के आदर्श पशु समझना चाहिए।

उन्नति के उपाय—ये पशु भारत में पहाड़ी इलाके के पशुओं में सबसे बढ़िया पशु हैं। ये दूध भी काफी देते हैं। बैल काम करने में काफी मजबूत होते हैं। इसलिए इनकी उन्नति समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से विधिवत् प्रजनन का कार्य करके करनी चाहिए। लेखक की राय में किसी बाहर के इलाके के पशु से संयोग कराकर इनकी उन्नति की चेष्टा नहीं करनी चाहिए।

२. बंगाल के मैदानी पशु

रहने का स्थान—ये पशु पच्छिम में पूर्नियां, भागलपुर, संथाल परगना से लगे हुए और पूर्वी-पाकिस्तान के बीच के भाग में जलपाईगुरी से मालवा, मुर्शिदाबाद, वीरभूमि, नदिया और बर्दवान के उत्तर तक के इलाके में पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—असल में यहां किसी मूल नसल के या

किसी खास जाति के पशु नही होते। ये पशु बिहार के हिस्से के तटवर्ती पशुओं तथा पहाडी पशुओं का संमिश्रण हैं।

इस इलाके में कई बार पशु-उन्नति का कार्य आरम्भ किया गया और बंगाल के बाहर के पशुओं के संयोग से भी प्रजनन का कार्य हुआ, परन्तु इसमें कभी कोई स्थायी सफलता नही मिली।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु कद और डील-डौल में छोटे होते है और देखने मे बिहारी और बंगाल के पहाडी इलाके के पशुओं के बीच के स्वरूप के होते है। इनका वजन लगभग ४००-५०० पौड तक होता है। इनकी खाल ढीली और छोटे चमकदार रोएंवाली होती है। कमर सीधी होती है। इनके सीग बंगाल के पहाडी पशुओं की तरह माथे से निकलने पर मोटे होते हैं फिर ये आगे को अर्द्ध-गोलाकार रूप मे ऊपर को उठते है, अन्त मे पतले और सिरे पर नोकीले हो जाते है। इनकी गर्दन छोटी होती है। गलकम्बल और थुई भी छोटी होती है। इनकी पूछ छोटी और सिरे पर गुच्छेदार होती है। मूतना भी छोटा होता है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां गर्मी-सर्दी ४०° से १००° फा० रहती है। वर्षा प्रतिवर्ष ६० इच तक होती है और नमी अधिक रहती है। खेती खूब होती है, विशेषकर धान की। यहां के निवासियों का मुख्य धन्धा खेती है। यहा जनसंख्या इतनी अधिक है कि उनकी खुराक के लिए सघन खेती करनी पडती है और ज्यो-ज्यों खेती सघन होती है यहां के पशु खराब होते जाते हैं। यहां की भूमि में वांछित खनिज पदार्थों की काफी कमी है, इसलिए यहां के पशुओं का अस्थि-पंजर और डीलडौल विकसित नही हो पाता और वे छोटे कद के तथा कमजोर होते है और बहुत कम दूध देते है।

गाय और बैल के गुण—गाये बहुत कम, लगभग सेर-सवा सेर दूध देती है। बैल भी बहुत कमज़ोर और कम काम करनेवाले होते हैं।

उन्नति के उपाय—यहां के पशु पहाडी और तटवर्ती बिहार के

इलाके के पशुओं के संमिश्रण हैं। यहां पशु-पालन की स्थिति भी अनुकूल नहीं है। इसलिए पशु-उन्नति के लिए यह आवश्यक है कि यहां के पशुओं को खिलाने-पिलाने और वांछित खनिज पदार्थों की कमी की पूर्ति का समुचित प्रबन्ध हो। पशु-प्रजनन का कार्य समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली द्वारा करना चाहिए। यदि कहीं इस प्रणाली से वांछित फल प्राप्त न हो तो, या शीघ्र उन्नति करने के लिए मिलते-जुलते जलवायु और अन्य पशुपालन की अनुकूल स्थितियों के इलाके के ऐसे पशुओं से, जो कद और डीलडौल में मिलते-जुलते हों और जिनमें वांछित गुणवाली सन्तान पैदा करने की शक्ति भरपूर हो, संयोग कराकर प्रजनन कार्य किया जा सकता है। ऐसे पशु साहाबादी, हरियाना, थारपारकर तथा डांगी हो सकते हैं।

३. बंगाल में बाहर से आये हुए पशु

रहने का स्थान—बंगाल के तीसरे भाग में बर्दवान से लेकर बिहार के पूर्वी तटवर्ती भाग से उड़ीसा के मयूरभंज जिले के पूर्वी समुद्र-तट और बंगाल के 'चौबीस परगना जिले से लेकर पूर्वी पाकिस्तान के पच्छिम और दक्षिण में, जिसमें बर्दवान, बाकुरा, मिदनापुर, वीरभूम, जैसोर और नदिया का पश्चिम हिस्सा सम्मिलित है, पाये जाते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—ये कोई खास नसल या जाति के पशु नही हैं। ये पशु बंगाल में बाहर से आये पशुओं और यहां के स्थानिक पशुओं के सम्मिश्रण हैं। यहां काफी संख्या में बाहर से आयात किये हुए पशु निजी और सरकारी डेरी फार्म, कैटिल फार्म, बड़े-बड़े जमींदारों के यहां तथा बड़े-बड़े कस्बों में और शहरों में मिलते हैं। इस जाति के पशुओं की उन्नति के लिए यहां कई बार बंगाल के बाहर से बिहार, उत्तरप्रदेश, पंजाब, सिंध तथा थारपारकर इलाके के पशुओं का आयात करके प्रजनन का कार्य किया गया। कई बार भारत से बाहर के एयरशायर और आस्ट्रेलिया आदि देशों से भी सांड मंगाकर

यहां के पशुओं की उपयोगिता बढ़ाने का प्रयत्न किया गया, परन्तु कोई स्थायी उन्नति नहीं हो पाई।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—बंगाल के मैदानी पशुओं के डीलडौल का विवरण तो पहले दिया ही जा चुका है। बाहर से आयात किये हुए पशुओं की शारीरिक बनावट, डील-डौल, वजन, रंग आदि, उनकी जाति या नसल के पशुओं तथा उनके स्थान के पशुओं के अनुरूप होता है। यहां आने पर यहा की जलवायु और वातावरण आयात किये हुए पशुओं की स्थिति के विपरीत होने के कारण वे कमजोर, भद्दे और कम उपयोगी हो जाते हैं। इनकी वर्णसंकर सन्तान स्थानिक पशुओं और उनकी जाति के मूल पशुओं से शक्ल-सूरत, शरीर की बनावट और उपयोगिता में करीब-करीब मिलती-जुलती होती है।

जलवायु, भूमि तथा खानपान का असर—यहां गर्मी-सर्दी साधारण तथा वर्षा अत्यधिक होती है। यहां नमी भी अधिक है। खेती खूब होती है, विशेषकर धान की। यहां के निवासियों का मुख्य धन्धा खेती है। यहा जनसंख्या इतनी अधिक है कि उनकी खुराक के लिए सघन खेती करनी पड़ती है। ज्यों-ज्यों खेती सघन होती है और मनुष्य-संख्या बढती जाती है, यहा के पशु खराब होते जाते है। यहां की भूमि में वांछित खनिज पदार्थों की काफी कमी है। यहां जो पशु बाहर से आयात किये जाते हैं, यद्यपि उनकी देखभाल और खिलाई-पिलाई अच्छी होती है फिर भी वे अपने मूल स्थान से कम उपयोगी हो जाते हैं। उनकी वर्ण-संकर सन्तान और भी कम उपयोगी हो जाती है। इस इलाके की जलवायु तथा अन्य स्थितियां इन पशुओं के माफिक नही आतीं।

गाय और बैल के गुण—इस इलाके की गाय बहुत कम दूध देती हैं और बैल भी छोटे कद के और कम काम करनेवाले होते हैं। आयात किये हुए पशु अपेक्षाकृत, बहुत अधिक दूध देते है और बैल भी अच्छा काम करते हैं, परन्तु इनके वर्णसंकर अच्छे नहीं होते।

उन्नति के उपाय—इस इलाके के मैदानी पशुओं की उन्नति के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है। आयात किये हुए पशुओं की उन्नति के लिए उन्हींकी नसल या जाति के सांड को उन्हींके साथ आयात करके और उनसे ही संयोग कराकर वंश-वृद्धि करानी चाहिए।

: १४ :

असम के गाय-बैल

इस प्रदेश के उत्तर में भूटान और ल्हासा तथा सिक्यांग से सटा हुआ हिमालय पर्वत है। पूर्व में बर्मा, दक्षिण में पाकिस्तान का हिस्सा और पश्चिममें बंगाल का कूचबिहार तथा पाकिस्तान का रंगपुर जिला स्थित है। यहां प्रायः चिकनी, दुमट तथा पहाड़ी इलाके के भाग में पथरील भूमि मिलती है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की काफी कमी है। मैदानी इलाके में गर्मी कम, सर्दी साधारण और वर्षा बहुत अधिक होती है। पहाड़ी इलाके में सर्दी और वर्षा दोनों ही बहुत होती हैं। यहां पशुओं को चराई खूब मिलती है। यद्यपि यहां चारा बोने का रिवाज नहीं है, तब भी खेती से खाने-पीने को काफी उपलब्ध हो जाता है। फिर भी वांछित खनिज पदार्थों की कमी और अत्यधिक वर्षा होने के कारण यहां पशु कमजोर होते हैं। वर्षा-ऋतु में पशुओं को खाने को पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलता। इस कारण वे वर्षा और भूख से इतने दुःखी होते हैं कि हमेशा के लिए दुष्प्रभावित हो जाते हैं।

इस प्रदेश में किसी खास जाति या नसल के पशु नहीं होते। यहां जो पशु मिलते हैं वे बंगाल के पहाड़ी इलाके में श्री, गौर और ग्याल पशुओं से मिलते-जुलते होते हैं। इसके अलावा उन जैसे ही पशु नागा पर्वत, खासिया, मनीपुर के इलाके, जैन्तिया पर्वत और अन्य स्थानों में तथा ब्रह्म देश के तटवर्ती भाग में पाये जाते हैं। बर्मा के तटवर्ती इलाके के पशु इस इलाके के अन्य पशुओं की अपेक्षा दूध देने और काम करने में अच्छे होते हैं।

इस इलाके में पशु-उन्नति के लिए कहीं-कहीं कुछ कार्य हुआ है,

परन्तु उसमें कोई खास सफलता नहीं मिली। ऐसा प्रतीत होता है कि यहां के पूर्वी इलाके के पशुओं की उत्पत्ति आसाम के उत्तरी भाग के पशुओं और बर्मा के पशुओं के संयोग से हुई और पश्चिमी भाग के पशु बंगाल के तटवर्ती इलाके के पशुओं से प्रभावित हैं।

यहां के रहनेवालों का निर्वाह विशेषतया खेती, उद्यान तथा वन-उद्योग और पशु-पालन पर ही निर्भर करता है। इसलिए पशुओं की उन्नति वहां के निवासियों की उन्नति के लिए परम आवश्यक बात है। यदि यहां के पशुओं के खिलाने-पिलाने का समुचित प्रबन्ध हो जाय, खास करके वर्षा ऋतु में और वांछित खनिज-पदार्थों की कमी चारे दाने के साथ यथोचित खनिज पदार्थ खिलाकर दूर कर दी जाय तथा श्री नसल की गाय को इस इलाके में लाकर यहां के चुनैता और उससे मिलते-जुलते कद के पशुओं से संयोग कराया जाय तो उनकी वर्ण-संकर संतति फैलने से यहां के पशुओं का विकास और उन्नति हो सकती है। पशु-विशेषज्ञों की राय से तटवर्ती बरमा के इलाके के पशुओं का भी इन पशुओं से संयोग कराकर इनकी उन्नति की जा सकती है।

: १५ :

उड़ीसा के गाय-बैल

इस प्रदेश के उत्तरी-भाग में मध्य-प्रदेश और बिहार प्रदेश, पूर्व में बंगाल और बंगाल की खाड़ी, दक्षिण में बंगाल की खाड़ी और आन्ध्र-प्रदेश तथा पश्चिम में मध्य-प्रदेश स्थित है।

यहां की भूमि प्रायः चिकनी, कहीं-कहीं दुमट तथा पहाड़ी इलाके में पथरीली होती है। यहां वांछित खनिज पदार्थों की बहुत कमी है। इस इलाके में गर्मियों में ११६° फा० तक गर्मी, सर्दियों में ४५° फा० सर्दी और वर्षा ऋतु में वर्षा करीब ६० इंच होती है। यहां की जलवायु तर होती है। यहां वर्षा ऋतु में नदियों में खूब बाढ़ आती है। मैदानी इलाके में पानी भर जाता है जिससे काफी क्षति होती है।

यहां पशुओं को जहां कहीं चराई मिलती है, वहां की घास बहुत कमजोर होती है। यहां अधिकतर धान की खेती होती है। वर्षा ऋतु में पानी भर जाने के कारण पशुओं को चरने के लिए कुछ नहीं मिलता। गर्मियों में घास झुलस जाती है। इसलिए पशुओं को वर्ष के अधिकांश भाग में भूखा रहना पड़ता है। कभी-कभी तो वे भूख के मारे तड़प-तड़पकर ही काफी संख्या में मर जाते हैं।

समुद्र के तटवर्ती इलाके में तथा कहीं-कहीं पहाड़ से सटे हुए इलाके में पशुओं को अपेक्षाकृत अच्छी घास चरने को मिल जाती है। वहां के पशु अन्य भागों के पशुओं के मुकाबले में कुछ अच्छे और उपयोगी होते हैं।

यहां किसी खास नसल या जाति के पशु नहीं मिलते। यहां बंगाल और मध्य प्रदेश के पशुओं के मिश्रण ही मिलते हैं। आंध्र प्रदेश के

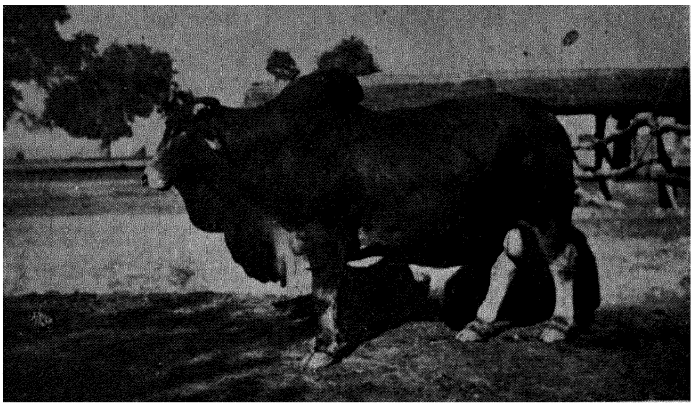
तटवर्ती इलाके में कुछ ऐसे पशु भी मिलते हैं जो उस इलाके के पशुओं से प्रभावित होते हैं।

यहां के पशु बहुत सीधे, कमजोर, छोटे कद के, कम दूध देनेवाले तथा जैसे-तैसे करके खेती और अन्य स्थानिक कार्यों को करनेवाले होते हैं। यहां की स्थिति पशुपालन के प्रतिकूल है। जबतक इसमें सुधार न होगा तबतक पशु-सम्बन्धी-विकास एवं उन्नति का कार्य संभव नहीं है।

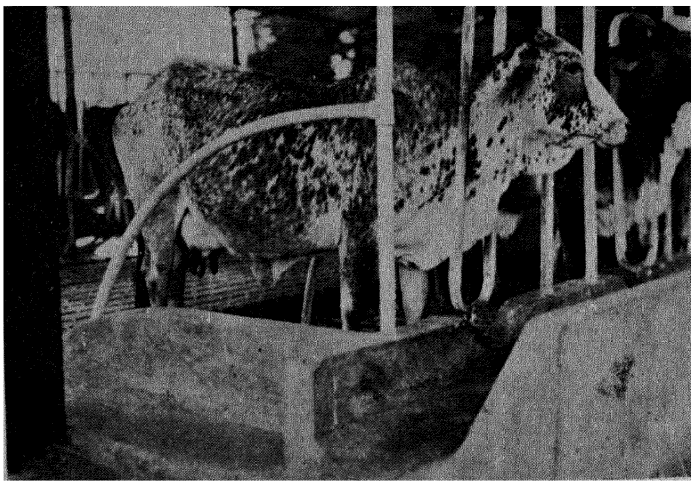
सरकारी-पशु-विभाग ने कहीं-कहीं पशु-प्रजनन और उनके विकास, तथा रोगों की रोकथाम का कार्य किया है, परन्तु स्थिति प्रतिकूल होने के कारण उसका कोई खास असर नहीं हुआ।

यहां के निवासी बहुत गरीब, कमजोर, अपेक्षाकृत कम काम करने वाले होते हैं। खेतीबाड़ी ही इनका मुख्य धन्धा है। इससे इन्हें इतनी आमदनी नहीं हो पाती जिससे रहने का स्तर ऊंचा उठ सके। इसलिए यह आवश्यक है कि खेती की उपज बढ़े और गाय अधिक दूध देनेवाली तथा बैल अधिक काम करनेवाले हों।

इस स्थिति को सुधारने के लिए पशुओं को घर में ठीक समय काटकर इकट्ठी की हुई घास तथा चारे के साथ अन्य वांछित खनिज-पदार्थों के खिलाने का रिवाज प्रचलित करना परमावश्यक है। इसके साथ-साथ पशुओं के लिए हरा चारा जहां कहीं भी सिंचाई का प्रबन्ध हो सके बोना होगा, ताकि वहां के पशुओं को आवश्यक पौष्टिक खुराक खिलाई जा सके और उसके अभाव में ऊपर से खली-दाना खिलाना होगा। इसके बाद उन्नति के लिए प्रजनन-कार्य करना उचित होगा। डांगी और निमारी जाति के पशुओं से यहां के पशुओं का संयोग कराकर उनकी अधिक उपयोगी वर्ण-संकर सन्तति का पारस्परिक संयोग से तथा समुचित चुनाव और छंटाव से उन्नत पशु उत्पन्न करने और उनको फैलाने का कार्य किया जा सकता है।



साहीवाल नसल का सांड



साहीवाल नसल की गाय

: १६ :

पाकिस्तान के प्रमुख पशु

पूर्वी पाकिस्तान में किसी खास नसल या जाति के पशु नहीं मिलते हैं। वहां के पशु पश्चिमी बंगाल के पशुओं-जैसे ही होते हैं। पश्चिमी पाकिस्तान में सिंध और साहीवाल दो प्रमुख नसलों के पशु मिलते हैं। इन दोनों नसलों के पशुओं की उन्नति करने के लिए भारत में विशेष रूप से कार्य हुआ है। इस कार्य में सफलता भी मिली है। इन दोनों नसलों के पशुओं की विशेषता यह रही है कि जहां भी उन्हें गवर्नमेंट फार्म, कृषि कालेज तथा अन्य सरकारी-गैरसरकारी संस्थाओं में पालने की समुचित सुविधाएं मिली हैं वहां ये पनप सके हैं। वहां की स्थानिक जलवायु एवं स्थितियों का इनपर कोई विपरीत असर नहीं पड़ा। इसलिए आजकल भी भारत में ये काफी संख्या में इधर-उधर पाये जाते हैं, खासकर उपर्युक्त संस्थाओं में। दोनों जातियों के पशु दूध देने के गुण के लिए अति उत्तम हैं। इन जातियों के बैल यद्यपि अच्छे नही समझे जाते, फिर भी धीरे-धीरे काम करने के लिए खासे होते हैं। भारत में इस समय अवर्णनीय पशु (नान-डिस्क्रुप्ट), और ऐसी जाति के पशु, जिनकी गायें बहुत ही कम दूध देती हैं, उनकी उन्नति और उनमें अधिक दूध देने की क्षमता बढ़ाने के लिए कहीं-कहीं इनसे संयोग कराया जाता है। आजकल भारत के अवर्णनीय या निकम्मे पशुओं की क्रमशः उन्नति (अपग्रेडिंग) के लिए इन्हें भारत में पाला जा रहा है। इन दोनों नसलों के पशुओं का वर्णन नीचे दिया है।

१. साहीवाल

रहने का स्थान—ये पाकिस्तान में पंजाब के मध्यवर्ती तथा दक्षिणी

सूखे भागों में होते हैं।

वंशोत्पत्ति का इतिहास—यहां की भूमि रेतीली होती है। पंजाब में नहरों का विस्तार होने से पहले वहां चराई के लिए, बड़े जंगल और मैदान थे। ये भाग नहरों के आने के बाद खेती की पैदावार के लिए बहुत उपजाऊ और अच्छे होगये हैं। यहां के मनुष्य हृष्ट-पुष्ट और दूध-घी खाने के शौकीन होते हैं। इसके अलावा रेतीली भूमि और पशुओं की संख्या अधिक होने के कारण खेतों की जुताई का काम यहां के मौजूदा साधारण और सुस्त बैलों से भी हो जाता था। इसलिए उन्होंने नसलोत्पत्ति के समय अधिक दूध देने के गुण की तरफ ही विशेष ध्यान रखा और इसी दृष्टि से इनकी वंशोत्पत्ति की। अधिक दूध देने के गुण के कारण पंजाब के कस्बों, बड़े शहरों और मंडियों में इस नसल की गायों की बड़ी मांग है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु ठिगने, भारी, मोटे और अपेक्षाकृत लम्बे शरीर के होते हैं। गाय का वजन ८००-८५० पौंड, बैल का लगभग ८५० पौंड तथा सांड का ९००-९५० पौंड तक होता है। खाल पतली तथा ढीली और रोआं बीच के दर्जे का होता है। ये गेरुए, सफेद, काले, हल्के लाल और चाकलेटी रंग के चकत्ते व दाग लिये हुए चितकबरे और केवल गेरुए रंग के होते हैं। कमर प्रायः सीधी, होती है, परन्तु थुई के पास झुकी हुई कमर के भी पशु होते हैं। पेट दोनों तरफ खूब फैला हुआ, बड़ा, मोटा और भारी होता है। छाती चौड़ी, सिर बीच के दर्जे का, परन्तु बीच में थोड़ा ऊपर को उभरा हुआ होता है। माथा भी बीच के दर्जे का होता है। सींग छोटे और बाहर की तरफ निकले हुए और ऊपर को उठे हुए और बड़े गठीले होते हैं। चेहरा बीच के दर्जे का और भरवां होता है। आंखें अच्छी विकसित, नाक थोड़ी बड़ी होती है। कान बीच के दर्जे के लटकवां होते हैं। गर्दन छोटी और मोटी होती है। गलकम्बल बीच के दर्जे से थोड़ा बड़ा और लटकवां होता है। थुई खूब विकसित और भारी होती है। कूल्हे खूब फैले हुए और मजबूत

होते हैं। ऐन बड़े और थोड़ा लटकवां होते हैं। थन बीचके माप के परन्तु एक-दूसरे से विशेष दूर नहीं होते। पूछ लम्बी और काले बालों की गुच्छेदार होती है। मूतना बडा और लटकवां होता है।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहा तापक्रम प्रायः ३५° से ११८° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष करीब १० से २० इंच होती है। इन पशुओं के इलाके में आरम्भ में जंगल और घास खूब थी, और यहां वांछित खनिज पदार्थों की कमी नहीं थी। जब नहर निकली तो चारा खूब मिलने लगा, इसलिए शरीर की बढ़ोत्तरी खूब हुई और उसे कायम रक्खा जा सका।

गाय और बैल के गुण—ये गायें बहुत अच्छा दूध देनेवाली होती हैं। ८ से १० सेर दूध देनेवाली गाय आसानी से मिल जाती है। वैसे तो इस जाति की उत्तम गाय १५-२० सेर दूध भी देती है। भारत में अब भी सबसे अधिक दूध देनेवाली गाय साहीवाल ही समझी जाती है। इसी कारण फौजी विभाग के डेयरी फार्म मे इनको बहुतायत से रक्खा जाता है। यह लगभग चार वर्ष में पहली बार ब्याती है। फिर हर साल ब्याती रहती है। बैल इसके सुस्त होते हैं। भारी बोझ खीच सकते हैं, परन्तु दमदार नही होते।

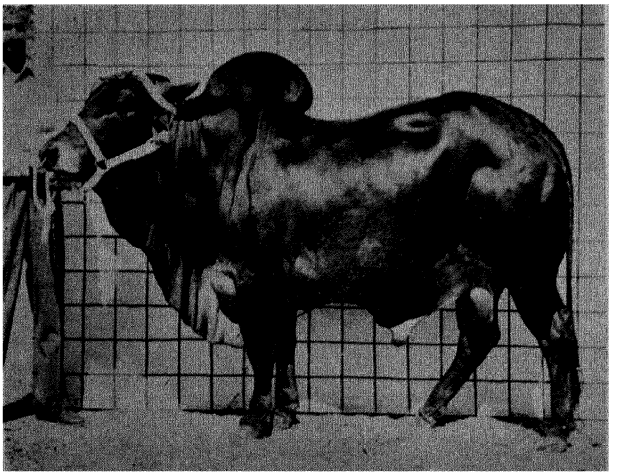
उन्नति के उपाय—इस नसल के पशु पाकिस्तान के इलाके में होते हैं। दूध के लिए ये बहुत बढिया जाति के पशु हैं। इसके अलावा इनमें यह विशेष गुण है कि ये भारत के हरेक हिस्से में हर प्रकार की जलवायु में पनपते है। इसलिए भारत में फौजी दुग्धशालाओं तथा अन्य सरकारी और गैरसरकारी फार्मों मे अधिक दूध के गुण के कारण तथा पशु-प्रजनन के प्रयोग के लिए इस नसल के पशु पाले जाते हैं। वहां इनके दूध देने के गुण को बढ़ाने का प्रयत्न भी किया जाता है। ये पशु केवल दूध देने के लिए अच्छे होते है और इनके बैल अच्छे नही होते और न ही इनको भारत की जनता किसी खास इलाके मे पालती है। इसलिए बड़े पैमाने पर भारत में इनकी वंशोन्नति का प्रश्न ही नही उठता।

सिंधी

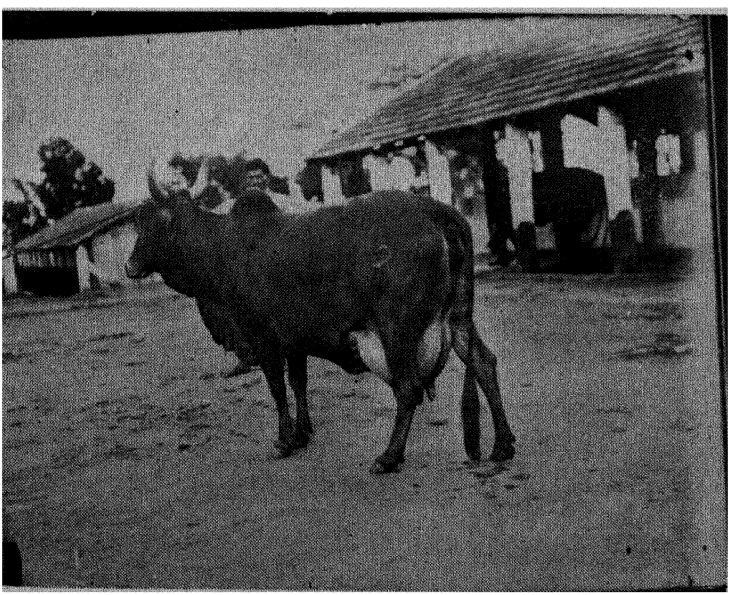
रहने का स्थान—पाकिस्तान के सिंध और करांची के आसपास और उसके उत्तर-पश्चिम के इलाके में तथा इससे लगे हुए बिलोचिस्तान के कुछ हिस्सों में ये पशु मिलते हैं। यह भारतवर्ष की नसल नहीं है, परन्तु अपने गुण के कारण यह नसल भारत के कई हिस्सों में मिलती है। इसलिए इनका सूक्ष्म वर्णन दिया जाता है।

वंशोत्पति का इतिहास—ऐसा प्रतीत होता है कि ये पशु गिर नसल और अफगानिस्तान के पशुओं का मिश्रण हैं; परन्तु करांची के और इसके आसपास के इलाके में इन पशुओं का प्रजनन-कार्य एकमाफिक बहुत समय तक होता रहा है। इस कारण इनकी एक पृथक् मूल नसल बन गई है।

शारीरिक बनावट, वजन, रंग आदि—ये पशु देखने में बहुत सुन्दर, छोटे कद के और गठे हुए शरीर के होते हैं। ये विशेष लम्बे नहीं होते। इनमें गाय का वजन लगभग ७००-७५० पौंड होता है। बैल का ७५०-८०० पौंड और सांड का ८००-८५० पौंड होता है। इनकी खाल पतली और रोआं छोटा और चमकीला होता है। इनका रंग गेरुआ होता है। किसी-किसी पशु के सफेद चकत्ते भी होते हैं। कमर कुछ चौड़ी होती है परन्तु विशेष लम्बी नहीं होती। यह बीच के हिस्से से थुई तक कुछ दबी हुई सी मालूम देती है। पेट खूब विकसित, गहरा और दोनों तरफ खूब फैला हुआ होता है। छाती खूब विकसित और चौड़ी होती है। सिर चौड़ा और एक-सा होता है। माथा चौड़ा होता है। सींग थोड़े मोटे और दोनों तरफ बाहर को होते हुए ऊपर को गोलाकार रूप में जाते हैं। ये काफी मजबूत और थोड़े मोटे होते हैं। चेहरा मंझला और भरा हुआ तथा माथे के पास कुछ चौड़ा होता है। आंख बड़ी, नाक खूब विकसित और कान मंझले और कुछ लटकवां होते हैं। गर्दन छोटी और मजबूत होती है। गलकम्बल मंझली जाति का लटकवां होता है। थुई अच्छी और



सिंधी नसल का सांड



सिंधी नसल की गाय

विकसित होती है, परन्तु नर-पशुओं की कुछ बड़ी होता है। कूल्हे चौड़े, लम्बे और खूब मजबूत होते हैं। ऐन आदर्श माप के फैले हुए और खूब भरवां होते हैं। मूतना कुछ बड़े साइज का और लटकवां होता है। सिंधी गायों का आगे का हिस्सा कुछ हल्का और पीछे का हिस्सा कुछ भारी होता है। आकार-प्रकारों में वे दूध देनेवाली आदर्श गाय होती हैं।

जलवायु, भूमि और खानपान का असर—यहां तापक्रम प्रायः ३५° और १२०° फा० और वर्षा प्रतिवर्ष ८ इंच होती है। इनका इलाका रेतीली दुमट मिट्टी का है। इस इलाके में वर्षा बहुत ही कम होती है। यहां खनिज पदार्थों की कमी नहीं है। सिंचाई के साधन उपलब्ध होने के कारण यहां अच्छी खेती होती है। यहां पशुओं के लिए चारा बोने का भी रिवाज है। इन पशुओं को गोचर-भूमि में भी चराया जाता है। यहां के रहनेवालों का पशु-पालन भी एक धन्धा है। इस कारण गोचरों में चराने के अलावा वे इनकी और भी खिलाई-पिलाई तथा अच्छी देखभाल करते है। अतः यहा के पशुओं का अस्थि-पंजर विकसित और मजबूत होता है और वे खूब दूध देते हैं। शरीर में विशेष भारी न होने के कारण ये अपने मालिकों के लिए बहुत लाभप्रद साबित हुए हैं।

गाय और बैलों के गुण—गाय दूध देने में और कद की दृष्टि से बहुत अच्छी होती है। और प्राय. ८-१० सेर दूध तो देती ही है। परन्तु १५-१६ सेर दूध देने वाली गाय भी मिलती है। ये पहली बार चार या साढ़े चार वर्ष मे, फिर हर वर्ष ब्याती है। बैल खासे होते हैं। ये हल जोतने और बोझ खीचने के काम आते हैं। परन्तु फुर्तीले, विशेष बोझ ढोनेवाले और चौकन्ने व दौड़नेवाले नही होते।

उन्नति के उपाय—ये अच्छी, प्रतिष्ठित, पृथक् अस्तित्व रखनेवाली नसल है। इनकी नसलोन्नति का कार्य समुचित चुनाव और छंटाव की प्रणाली से ही होना चाहिए।

: १७ :

सिंहावलोकन

पीछे के पृष्ठों में भारत के पन्द्रह प्रदेशों में ४४ जातियों के पशुओं का वर्णन दिया गया है। इनमें पंजाब के हरियाना, महागुजरात के कांकरेज, आंध्र के अंगोल तथा राजस्थान के थारपारकर नसल के पशुओं को दोहरे उद्देश्य की श्रेणी में रखा गया हैं। इन जातियों की गायें प्रतिदिन सात सेर से बारह सेर तक या इससे भी अधिक दूध देती हैं और एक ब्यांत में ढाई हजार पौंड से चार हजार पौंड तक दूध देने की क्षमता रखती हैं। इन जातियों के बैल अच्छे काम करनेवाले और खूब मजबूत होते हैं।

पाकिस्तान की साहीवाल और सिंधी, महागुजरात की गिर और राजस्थान की राठी इन चार जातियों की गायें दूध देने में बहुत उत्तम हैं, परन्तु इन जातियों के बैल काम करने की दृष्टि से साधारण होते हैं। इनको बहुत अधिक दूध देनेवाले एकांगी पशुओं की श्रेणी में रक्खा है। इनके अलावा हरियाना, कांकरेज, अंगोल और थारपारकर नसल की गायें उपर्युक्त गायों की भांति खूब दूध देती हैं। यदि इनको मिला लिया जाय तो बहुत अधिक दूध देनेवाली आठ नसलें हो जाती हैं। मैसूर के अमृतमहल, मध्यप्रदेश के मालवी, राजस्थान के नागौरी और मद्रास-प्रदेश के कांग्यम पशुओं को बहुत अच्छा काम करनेवाले और मजबूत बैल उत्पन्न करनेवाले एकांगी पशुओं की श्रेणी में रक्खा है। इनकी गायें साधारण दूध देनेवाली होती हैं। इनके अलावा दोहरे उद्देश्य वाले हरियाना और कांकरेज नसलों के बैल भी उपर्युक्त बैलों की ही भांति बहुत अच्छा काम करनेवाले होते हैं। यदि इन्हें इनमें मिला लिया जाय,

तो बहुत अच्छा काम करनेवाले और मजबूत बैलों की श्रेणी में छः नसलों के पशु हो जाते हैं।

अन्य जातियों के पशुओं में मध्य-प्रदेश के ग्वालो और निमारी, महाराष्ट्र प्रदेश के खिलारी और डांगी, आंध्र-प्रदेश के देओनी और कृष्णा-घाटी, उत्तर-प्रदेश के मध्यम मेवाती, हरियाना और बिहार-प्रदेश के साहाबादी तथा बंगाल-प्रदेश के श्री पशु सम्मिलित हैं। इनकी गायें दूध देने में खासी अच्छी होती हैं और बैल साधारण काम करनेवाले होते हैं। अगर बैल अच्छा काम करनेवाले और मजबूत होते हैं तो गाय साधारण दूध देनेवाली होती है। इसलिए इनको सर्वांगी अर्थात्—'साधारण दूध देनेवाले और साधारण काम करनेवाले' पशुओं की श्रेणी में रखा है।

अन्य तीन जातियों के पशुओं में मैसूर के हल्लीकर, मद्रास के आलमबाड़ी और बरनुर के बैल अच्छा काम करनेवाले होते हैं परन्तु गायें कम दूध देती हैं। इसलिए ये भी एकांगी पशुओं की श्रेणी में आते हैं।

चार पहाड़ी जाति के पशुओं में ग्याल, नैपाली, गौर बंगाल के, तथा असमी पशु, जो पहाड़ी पशुओं-जैसे ही हैं, सम्मिलित हैं। ये चारों ही अनिश्चित श्रेणी के पशुओं में से हैं। ये पशु दूध कम देते हैं और इनके बैल भी अन्य जातियों के मुकाबले में कम काम करनेवाले होते हैं। श्री नसल के पशु भी खासकर बंगाल के दार्जिलिंग जिले में सिक्किम के नीचे के भाग में मिलते हैं और असम में बंगाल से लगे हुए भाग में भी पाये जाते हैं। ये दूध देने में अच्छे होते हैं और काम करने में भी साधारण होते हैं। यदि इनको उपर्युक्त चार पहाड़ी पशुओं की श्रेणी में जोड़ दिया जाय तो पहाड़ी पशुओं की सूची में पांच जाति के पशु हो जाते हैं।

चवालीस जातियों के पशुओं में से तीस के विषय में ऊपर लिखा जा चुका है। शेष चौदह केरल प्रदेश के पशु, मध्य-प्रदेश के सतपुड़ा डिवीजन के, नर्मदा घाटी के मध्य भाग के, विंध्याचली और अत्यधिक वर्षा और धान के इलाके के पशु, छत्तीसगढ़ी, उत्तर-प्रदेश के पोआर,

खेरीगढ़ी और केनवारिया, बिहार-प्रदेश में मध्य-बिहार के पशु, गंगा और नैपाल राज्य के बीच के भाग के बचौर और पूर्वी-पश्चिमी बिहार के पशु, बंगाल-प्रदेश के मैदानी पशु, असम-प्रदेश के तथा उड़ीसा के प्रायः सभी पशु अनिश्चित श्रेणी में आते हैं। ये पशु अवर्णनीय हैं। इनकी गायें बहुत कम दूध देती हैं और बैल साधारण काम करनेवाले होते हैं। इस श्रेणी के पशु प्रायः छोटे कद के और अत्यधिक वर्षा या धान के इलाके में और पहाड़ी भाग में पाये जाते हैं। इन पशुओं को अनिश्चित श्रेणी में इसलिए रक्खा गया है कि ये प्रायः भिन्न-भिन्न जातियों के पशुओं के मिश्रण हैं और इनकी योग्यता के सम्बन्ध में कोई निश्चय या भरोसा करना कठिन है।

निम्नलिखित तालिका में भारतीय पशुओं की स्थिति की झांकी प्रस्तुत की जाती है, ताकि पाठक भारत की अनेक जातियों, नसलों, अवर्णनीय पशुओं तथा किसी विशेष जाति के पशुओं के चुनाव और उनकी उन्नति के विषय में निश्चय कर सकें।

नीचे तालिका में बहुत अधिक अच्छा, या अच्छा, साधारण, कम और निकृष्ट शब्दों का प्रयोग किया गया है। समस्त भारत की औसत स्थिति को सम्मुख रखकर उपर्युक्त और अन्य तुलनात्मक शब्दों का व्यवहार किया गया है। अमुक पशु, जिसे उपर्युक्त दृष्टि से कम उपयोगी बताया गया है, सम्भव है अपने निवास-स्थान या क्षेत्र में अच्छा उपयोगी या बढ़िया समझा जाता हो, परन्तु भारत की औसत स्थिति को सम्मुख रखकर उसे कम उपयोगी ही समझना चाहिए।